योगविद्या

वर्ष 6 अंक 4
अप्रैल 2017
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो : बाल योग दिवस 2017, पादुका दर्शन, मुंगेर;

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥6.35॥

अर्थ–हे अर्जुन, निश्चय ही मन चंचल है और उसका निग्रह कठिन, लेकिन अभ्यास और वैराग्य द्वारा इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

लक्ष्य पर अविरल ध्यान द्वारा चंचल मन को स्थिर रखने का निरंतर प्रयास ही अभ्यास कहलाता है। आत्मा या परमात्मा का एक ही विचार जब मन में लगातार दुहराया जाता है तो इससे मन के विक्षेप समाप्त होते हैं और वह एकाग्र हो जाता है।

इस लोक या परलोक के भोगों में दोष-दृष्टि रखने से उनके प्रति जो विरति विकसित होती है, वही वैराग्य है। मन को सांसारिक विषयों की क्षणभंगुरता देखने की आदत डालनी चाहिए। धीरे-धीरे मन बाह्य विषयों और भोगों से विमुख होने लगेगा।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 6 अंक 4 · अप्रैल 2017
(प्रकाशन का 55 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 शुद्धि की अनिवार्यता
6 क्रिया, कुण्डलिनी और तन्त्र
14 नास्ति योगात्परं बलम्
19 कुण्डलिनी योग
24 क्रिया योग के साधकों से
35 लय योग–औपनिषदीय क्रिया योग
41 सत्यम् वाणी
52 क्रिया योग प्रशिक्षण मॉड्यूल 1

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

शुद्धि की अनिवार्यता

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

दानशीलता, क्षमा और प्रेम जैसे दिव्य गुणों का उपार्जन करो। केवल यौगिक क्रियाओं से काम नहीं चलेगा। आत्म-विश्लेषण करो और अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष जैसे दोषों का निमूर्लन करो। अपने पास जो भी हो, उसे दूसरों के साथ बाँटना सीखो। नि:स्वार्थ सेवा करो। तब तुम्हें मानसिक शुद्धि की प्राप्ति होगी।

आजकल के साधक इन सब चीजों की उपेक्षा कर सिद्धियों के लालच में सीधे योग की उच्च क्रियाओं में कूद पड़ते हैं। यह एक गम्भीर और भारी भूल है। उनका निराशाजनक पतन अवश्य होता है। इसलिए सदा सावधान रहो। मात्र यौगिक क्रियाएँ स्थायी परिणाम नहीं दिला सकतीं। हृदय की शुद्धि अत्यावश्यक है। इसके बिना योग में सफलता सम्भव नहीं। तुम्हें अपने आपको कामुकता, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, घृणा, घमण्ड, आसक्ति, मोह इत्यादि से मुक्त रखना चाहिए। यह नौलि के अभ्यास या प्राण और अपान को मिलाने के अभ्यास से कहीं अधिक कठिन है।

कुण्डलिनी शक्ति को अनेक तरीकों से जागृत किया जा सकता है, जैसे, जप, भक्ति, आत्मविचार, आसन, कुम्भक, बन्ध, मुद्रा और सर्वोपरि, गुरु की कृपा से। तुम्हें सांसारिक कामनाओं से पूर्णत: रहित होना चाहिए। बहुत-से लोग रहस्यमयी शक्तियाँ प्राप्त करने के लिए कुण्डलिनी योग में कूद पड़ते हैं। अत्यन्त उत्सुकता और आशा के साथ वे शीर्षासन तथा अन्य आसन-प्राणायाम करते हैं।

परन्तु कोई भी साधक दीर्घ काल तक अभ्यास में टिक नहीं पाता। वे कुछ दिनों या महीनों के बाद अभ्यास को छोड़ देते हैं। यह उचित नहीं है। धैर्य और अध्यवसाय सफलता की प्राप्ति के लिए अत्यावश्यक हैं।

नए साधकों के लिए मेरी यही सलाह है कि सिद्धियों और कुण्डलिनी के शीघ्र जागरण की परवाह न करो। ईश्वर में भक्ति रखो, उन पर पूरा भरोसा रखो। अपने अन्दर समस्त मानवता की सेवा की भावना विकसित करो। कुण्डलिनी अपने आप ही जाग जाएगी।

कुण्डलिनी जागरण कोई सरल उपलब्धि नहीं है। यह बहुत कठिन और दुर्लभ है। जब सभी इच्छाएँ मिट जाती हैं, जब मन सम्पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाता है, जब सभी इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं, जब मन अत्यधिक एकाग्रता प्राप्त कर लेता है, जब 'मैं' और 'मेरा' के सभी विचार बह जाते हैं, तब कुण्डलिनी स्वत: ही जागृत हो जाती है। और तभी कुण्डलिनी का जागरण कल्याणकारी होता है। इसलिए पहले अपने आपको पूर्णतया शुद्ध करने का प्रयास करो। देवी माँ में पूरी श्रद्धा और विश्वास रखो। उचित समय आने पर वह सारा आवश्यक काम स्वयं कर देगी।

मेरे प्रिय बन्धुओं! निराश और दु:खी मत रहो। तुम्हारे जीवन में एक स्वर्णिम दिवस उदय होने की प्रतीक्षा कर रहा है। तुम शीघ्र ही ईश्वरीय शक्ति से आलोकित हो जाओगे। विघ्न-बाधाओं की परवाह न करो। चौबीस घण्टे कुण्डलिनी शक्ति पर अपनी दृष्टि रखो। उसे जागृत करने के लिए जितना सम्भव है, सब कुछ करो। यदि इसके लिए शुद्धता का विधान है तो अपने आपको अवश्य ही शुद्ध करो। तुम्हारे सामने कौन-सा दूसरा विकल्प है?

हे कुण्डलिनी माँ! षट्चक्रों का भेदन करने के बाद तुम सहस्रार के सहस्रदल कमल में अपने प्रियतम परमशिव के साथ क्रीडा करती हो! तुम्हें शत-शत प्रणाम! हम सबका मार्गदर्शन करो, हमें प्रकाश और ज्ञान दो!

क्रिया, कुण्डलिनी और तन्त्र

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हम लोग कई वर्षों से क्रियायोग के बारे में सुनते आ रहे हैं। हमने सुना तथा अनुभव भी किया है कि बहुत से यौगिक तथा तांत्रिक अभ्यासों के द्वारा, बिना मन से लड़ाई किए ही एकाग्रता, धारणा तथा ध्यान की स्थिति में पहुँचा जा सकता है।

जब आप अपने मन के विपरीत अपने को एकाग्र करने का प्रयास करते हैं तब बहुत कठिनाई होती है, उसमें द्वन्द्व तथा विद्रोह अन्दर से उभरकर ऊपर आते हैं। यह वही मन है जो एक ओर तेजी से चल रहा है और साथ ही स्वयं को बाँधने का प्रयास भी कर रहा है। मन की यह दो-मुखी वृत्ति ही मन के विस्फोट का कारण होती है। मन की ये दोनों वृत्तियाँ बड़ी ही शक्तिशाली हैं। मन की सामान्य वृत्ति इन्द्रियों के प्रवाह में रहने की होती है जिसके कारण मन इधर-उधर भागता है।

इस संदर्भ में तन्त्र शास्त्र में कई पद्धतियाँ हैं, जिनमें हम मन की वृत्ति के बारे में चिन्ता किये बिना आगे बढ़ सकते हैं। आप तन्त्र की इन क्रियाओं और योगाभ्यासों को करते चलिये, आप पायेंगे कि इन क्रियाओं से मन निश्चित रूप से शान्त हो जायेगा और उसकी सभी शक्तियाँ स्थिर होने लगेंगी। इस क्रम को क्रियायोग कहते हैं, जिसका आधार तन्त्र है।

मन को जानना

तान्त्रिक पद्धति में हम लोग विश्वास करते हैं कि मन कोई दूसरी चीज नहीं है जिससे आपको झगड़ने की जरूरत हो। दुनिया में बहुत-से धर्म हैं जिनमें हमारा अपना हिन्दू धर्म भी शामिल है। प्राय: सभी धर्मों में आपको सबसे पहले मन से लड़ाई की बात बताई जाती है। परन्तु तन्त्र-शास्त्र में इन सबसे विपरीत बात सिखाई जाती है। तन्त्र कहता है, आप मन से लड़ाई न करें, क्योंकि मन एक शक्ति है।

यह मन बहुत शक्तिशाली है। यदि आपने शुरू में ही इससे विद्रोह करना शुरू कर दिया तो शीघ्र ही आप आध्यात्मिक मार्ग में पिछड़ जायेंगे। इसलिए तन्त्र-शास्त्र के अभ्यासों में मन जहाँ भी जाता है, जो कुछ भी हरकत करता है उसे करने दीजिये, उसे रोकिये नहीं। अच्छा यही है कि कुछ समय तक मन के साथ ही चलिये, अपने पूरे मन को पहचानिये।

आप लोग मन के रहस्य को जाने बिना, उसकी क्रियात्मक शक्तियों, कार्य-विधियों तथा आदतों को जाने बिना ही उसे नियंत्रण में लाना चाहते हैं। क्या आपको उस शक्ति का, उस वस्तु का ज्ञान है? क्या आपको मन की गति का पता है, जिसे काबू में करना चाहते हैं? क्या आप इसको काबू में कर पा रहे हैं? आप केवल अपने विचारों पर नियंत्रण कर रहे हैं और विचार मन नहीं हैं। किसी भी ध्यान के अभ्यास में, चाहे वह मेरे द्वारा दिया गया अभ्यास ही क्यों न हो, जब आप मन को काबू में करने की कोशिश करते हैं तब वास्तव में आप अपने विचारों पर नियंत्रण करते हैं, मन पर नहीं। आप मन के बारे में क्या जानते हैं? कुछ भी नहीं। जैसे आप समुद्र पर तैरती हिमशिला को देखते हैं, जिसका अधिकांश हिम पानी के नीचे होता है और थोड़ा-सा भाग ही ऊपर दिखाई देता है, वैसे ही आप मन की केवल ऊपरी सतह को जानते हैं। हम लोग केवल विचारों, भावनाओं, इच्छाओं या संवेदनाओं के विषय में बोलते हैं, परन्तु मन तथा चेतना के संदर्भ में वे कुछ भी नहीं हैं। मन अनन्त है। योगाभ्यासियों को इस अनन्त मन के साथ बहुत ही सावधानी से व्यवहार करने की आवश्यकता है। इसलिए तन्त्र में आपको सुझाव दिया जाता है कि मन के साथ मित्रता का व्यवहार करो। कुछ समय तक मन के साथ चलो, यही सलाह है।

क्रिया योग

क्रिया योग में आसन-प्राणायाम के अभ्यास हैं, मुद्रा, बन्ध आदि भी शामिल हैं। इसमें लगभग बीस अभ्यास हैं, जिन्हें क्रम से करना चाहिए। इस समय मैं इन सबके विषय में चर्चा नहीं करूँगा, क्योंकि क्रिया योग पर विस्तार से मैं बहुत कुछ लिख चुका हूँ और वास्तव में जो लोग इस विषय की गहराई में जाना चाहते हैं, उन्हें उन पुस्तकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। अब मैं आप लोगों को ध्यान की एक विधि समझाने की कोशिश करूँगा, जिसमें आपको अपने मन से लड़ने की जरूरत नहीं है। इस अभ्यास में आपको आँखें भी बन्द नहीं करनी हैं और न ही इसमें स्थिरता के लिए पद्मासन या अन्य किसी विशेष आसन में बैठना है। आपको मन के विषय में जरा भी चिन्तित नहीं होना है कि वह क्या कर रहा है, क्या सोच रहा है। आपको केवल अभ्यास करते जाना है। जब आप अपने अभ्यास को समाप्त करेंगे, तब देखेंगे कि आपका मन शान्त और शिथिल हो गया है, उसकी वृत्तियों

के झगड़े बहुत ही कम हो गये हैं और तब आप अपने प्रतीक पर मन को एकाग्र करने में सफल होंगे। चाहे वह क्रियायोग हो या अन्य कोई योग, मुख्य बात यह है कि प्रतीक स्पष्ट और साफ होना चाहिये। आन्तरिक दृश्यों की सफाई के लिए ही इन सब क्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है।

इसलिए कई शताब्दियों पहले ध्यान को अनिवार्य बताया गया। यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ तक कि बाइबिल के समय और उससे भी पहले वैदिक काल में क्रिया योग का अभ्यास बहुत प्रसिद्ध था। उनमें से एक अभ्यास मैं आपको यहाँ कराता हूँ, जिसे महामुद्रा कहते हैं। मैं इसे कोई गुप्त-विद्या नहीं मानता, यह उन सभी लोगों को दी जा सकती है जो इसके लिए तैयार हों। क्रिया योग का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है, प्रत्येक व्यक्ति इसके लिए योग्य है। आखिर क्रिया योग के लिए वास्तव में कौन-सी योग्यता की जरूरत है? एक अपूर्ण, असंतुलित, द्वन्द्वात्मक एवं निराश मन, अर्थात् परिस्थितियों से विक्षिप्त मन ही तो क्रिया योग के लिए आवश्यक योग्यता है! क्रिया योग के लिये आपको चुप और शान्त बैठने वाले मन की जरूरत नहीं है। आपको जरूरत है उस मन की जिसमें सुधार की आवश्यकता हो।

महामुद्रा के अभ्यास में पहले आप वज्रासन में बैठो, अब अपने एक पैर को आगे फैला दो। दोनों पैरों के घुटने पास-पास हों। अपने दोनों हाथों को घुटनों पर रख दो। मूलबन्ध लगाओ और तीन बार मूलाधार चक्र पर मन को एकाग्र करो। तब उज्जायी प्राणायाम में सामने के मार्ग से सीधे बिन्दु चक्र तक श्वास लो और वहाँ

तीन सेकण्ड के लिए श्वास रोको। अब अपने फैले हुए पैर के पंजे को पकड़ो। शाम्भवी मुद्रा लगाओ, अपनी दृष्टि को भ्रूमध्य में केन्द्रित करो। इसके साथ ही खेचरी मुद्रा भी लगाओ। इसमें जीभ को उलटकर तालू के पीछे के हिस्से से लगा दिया जाता है। अपनी सजगता को एक के बाद एक इन तीनों केन्द्रों पर लगाओ—शाम्भवी, खेचरी और मूलबन्ध। भ्रूमध्य पर और जीभ का सिरा जिस हिस्से को छू रहा है, उस स्थान पर ध्यान रखो और मूलाधार क्षेत्र को पूरी तरह से संकुचित कर लगभग बारह बार इसे करो। अब अपने दोनों हाथों को पुन: घुटनों पर ले आओ और

श्वास पीछे मेरुदण्ड से मूलाधार तक छोड़ो। यह महामुद्रा है। इसे चार बार करो और उसके बाद अपने मन की स्थिति का निरीक्षण करो। मन एक तत्त्व है और इसे प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों को परिवर्तित करके नियंत्रित किया जा सकता है, जैसे क्रिया योग, मुद्रा, बन्ध आदि में होता है। कुछ समय तक मन को जबरदस्ती पीछे ढकेलना और चुपचाप बैठे-बैठे 'सोऽहं' या ॐ का जप करना, यह वैज्ञानिक पद्धति नहीं है। यह उन लोगों के लिए है जिनका गुरु नहीं है।

कुण्डलिनी योग

अब हम कुण्डलिनी योग पर चर्चा करते हैं जो तन्त्र का एक विषय होने के कारण बहुत महत्त्व का है। यह क्रिया योग का ही एक भाग है। कुण्डलिनी योग में ध्यान देने की विशेष बात यह है कि शरीर में चक्रों को जगाकर आप अपने मन की शक्तियों का जागरण कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति हशीश, गाँजा या एल.एस.डी. लेता है तो उस समय उसका मन कितने भी द्वन्द्व अथवा परेशानी में हो, कुछ ही क्षणों में उसमें एकता आने लगती है, वह शान्त हो जाता है। इसी प्रकार से कुण्डलिनी योग के अभ्यास में आपको मेरुदण्ड के कुछ निश्चित चक्रों को जगाने का प्रयास करना चाहिए और इनमें से यदि एक भी चक्र जग जाए तो आपकी पूरी मन:स्थिति ही बदल जायेगी। मन का विस्तार होने लगेगा या आप कह सकते हो कि मन लीन होने लगेगा और फिर आप जीवन के उतार-चढ़ावों तथा कठिनाइयों की परवाह नहीं करोगे।

इनमें से पहला चक्र, मूलाधार नीचे रीढ़ के अन्तिम भाग में है। पुरुषों में इसका स्थान गुदा तथा मूत्रद्वार के बीच में है। स्त्रियों में इसकी स्थिति कुछ भिन्न होती है। यह गर्भाशय के पीछे अन्दर में है। यह एक छोटी ग्रन्थि की तरह होता है, परन्तु इसकी शक्तियाँ अभी सुप्तावस्था में हैं। इस मूलाधार चक्र को जगाने की बहुत-सी विधियाँ हैं, जैसे, मूलबन्ध, वज्रोली मुद्रा और महामुद्रा, जिसे मैंने अभी आपको सिखाया है।

जब शरीर में चेतना का कोई केन्द्र जाग जाता है तब मन की स्थिति में अन्तर आता है। निश्चित रूप से यह आपकी चेतना को उस बिन्दु पर ले आता है जहाँ से आप सरलतापूर्वक ध्यान शुरू कर सकते हैं और इसमें आपको अपने मन से लड़ने की भी जरूरत नहीं होती।

मूलाधार से ऊपर रीढ़ प्रदेश में अन्य कई सूक्ष्म केन्द्र हैं, जिनमें से एक विशेष चक्र है अनाहत। इसे कुछ लोग हृदय-केन्द्र कहना पसन्द करते हैं क्योंकि इसकी स्थिति रीढ़ में हृदय के ठीक पीछे है। अनाहत चक्र के जगने पर सामान्य मन:स्थिति पलट जाती है, आप कुछ नवीन-सा अनुभव करते हो। आपकी चेतना बहुत ही अलग, उच्च स्थिति में आ जाती है। आप प्रेम और एकता जैसी भावनाओं को

वास्तव में उस क्षण महसूस कर सकते हो। चेतना की सामान्य स्थिति में आप नहीं जान पाते कि प्रेम, एकता और प्रकाश का वास्तविक अर्थ क्या है, परन्तु जब आप उच्च चेतना को प्राप्त करते हैं तब ये अनुभव की वस्तुएँ बन जाती हैं।

आज्ञा चक्र सुषुम्ना के सबसे ऊपरी भाग में स्थित है। जब आज्ञा चक्र जाग जाता है तब हमारे अन्दर की सूक्ष्म शक्तियाँ प्रवाहित होने लगती हैं। हम सृष्टि की सूक्ष्म गहराइयों से जुड़ जाते हैं। आप जानते होंगे कि यह विश्व केवल पदार्थ नहीं, शक्ति भी है। इस संसार में इलेक्ट्रो-मैगनेटिक और थर्मोन्यूक्लियर जैसे भौतिक फील्ड्स हैं और आप उनमें से कइयों को जानते हैं। यह दुनिया मात्र वही तो नहीं है जो आपकी साधारण आँखों से दिखाई देती है। इस विश्व में अनेक सूक्ष्म स्पन्दन हैं, परन्तु हम उनसे अपने तार नहीं जोड़ पाते। आज्ञा चक्र के जागते ही मन का विस्तार होता है, चेतना के स्तर में अन्तर आता है, वोल्टेज भिन्न हो जाता है। प्रत्येक चीज में नवीनता आने लगती है। एकदम से आपका संपर्क इस विस्तृत ब्रह्माण्ड से जुड़ जाता है। अभी हम इस ब्रह्माण्ड से दूर हैं, क्योंकि हमें

चेतना की वह स्थिति प्राप्त नहीं है। किसी भी विधि द्वारा आज्ञा चक्र के जगने पर इस ब्रह्माण्ड का सही दृश्य दिखाई देता है और यह एक उदाहरण है जिससे आप जान सकते हैं कि कुण्डलिनी योग आपकी मन:स्थिति का विकास करने में कितना सहायक हो सकता है।

आप इस बात पर अच्छी तरह गौर करें कि मैं मन के स्वरूप को समझाने के लिए कितनी सावधानी से अपने भावों को आपके सामने रख रहा हूँ। मैं मन का सबसे बड़ा मित्र हूँ। मेरा मन हमेशा मेरा मित्र रहा है और मुझे कभी इससे लड़ना नहीं पड़ता। कभी-कभी यह गड़बड़ी करता है, पर मैं उसे बुरा नहीं मानता, क्योंकि आखिरकार यह मेरा ही है और मैं भी वही हूँ। मुझे यूँ कहना चाहिए कि मैं अपने मन के व्यवहार से कभी लज्जित या दु:खी नहीं हुआ। मेरा मन वर्षों तक कई व्यर्थ की बातें सोचा करता था, परन्तु फिर भी मैं यह जानता था कि आखिर है तो मेरा ही मन। मैं अपने मन को कैसे गाली दे सकता हूँ, कैसे बदनाम कर सकता हूँ, कैसे आलोचना कर सकता हूँ? यदि मैं ऐसा करता हूँ तो इसका तात्पर्य यह है कि मैं अपनी ही आलोचना कर रहा हूँ।

मेरा हमेशा से यही विश्वास रहा है कि हमें अपने मन को नहीं मारना चाहिए। मारने से तो अच्छा है कि उसका अतिक्रमण कर दिया जाए। कभी-कभी तो मैं यहाँ तक सोचता हूँ कि हमें अपने मन को रूपान्तरित करने के बजाय मन के ऊपर से छलांग लगा देनी चाहिए। मैंने बहुत-सी किताबों में मन के रूपांतरण के बारे में लिखा है, परन्तु अब मैं अनुभव करता हूँ कि रूपांतरण शब्द के बदले 'अतिक्रमण' शब्द अधिक सटीक है। आप मन का अतिक्रमण कैसे कर सकते हो?

मन का स्वभाव है उछलना-कूदना, अनुभव करना, क्रिया-प्रतिक्रिया करना। मन तो हमेशा सक्रिय रहता है। जब आप हवाई जहाज में उड़ते हो तब पृथ्वी पर ऊँची-ऊँची मीनारें माचिस की डिबिया जैसी नजर आती हैं। इसी प्रकार से जब आप योग या आध्यात्मिक जीवन में आते हैं तब आपको अपने लिए एक विधि खोजनी चाहिए जिससे आपको अपने मन से भिड़ने की जरूरत ही न पड़े। एक उपाय है जिसके द्वारा आपको मन को मारना न पड़े और आप अपने मन का अतिक्रमण कर सकें। कुण्डलिनी योग आपको ठीक और सही विधि सिखाता है। मैंने जितनी भी तान्त्रिक पुस्तकें पढ़ी हैं, उनमें कहीं भी एक वाक्य ऐसा नहीं मिला जिसमें लिखा हो कि मन को नियंत्रित करो।

पूर्व में कुण्डलिनी योग लोगों के लिए डरावना विषय हुआ करता था। कुछ ही लोगों को उसके बारे में थोड़ा और धुंधला-सा ज्ञान था। वे सोचा करते थे कि कुण्डलिनी जाग गयी तो ईश्वर जाने क्या होगा। इसलिए आप लोग कुण्डलिनी के प्रभावों से इतने भयभीत हैं, परन्तु क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि जब आप बहुत अधिक शराब पी लेते हैं तो क्या होता है? वास्तविकता तो यह है कि

लोग आध्यात्मिक जीवन के विषय में ये सब नकारात्मक बातें करते रहे हैं, क्योंकि वे निम्न वासनाओं में लिप्त रहना चाहते हैं। इसलिए कई बार बहुत ही डरावने, भयावह तथा निरुत्साही चित्र दिखाए जाते हैं। आप लोगों ने यह तो कभी नहीं कहा कि एल.एस.डी. खतरनाक है, शराब या सिगरेट पीना खतरनाक है। ये सब तो बिल्कुल ठीक हैं, परन्तु एकमात्र कुण्डलिनी योग ही खतरनाक है, ऐसा क्यों?

कुण्डलिनी योग ही वह माध्यम है जिसके द्वारा आप वास्तव में अपनी चेतना का विस्तार कर सकते हैं, अपनी पूर्ण मन:स्थिति को बदल सकते हैं, अपने हॉर्मोन्स और सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान पर नियंत्रण पा सकते हैं। कुण्डलिनी योग का अन्त:स्रावी ग्रन्थियों और स्नायु-संस्थान पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। भावनायें कहाँ से उठती हैं? यदि एक बार आप सही नाड़ी को जान लें तो आप कई समस्याओं का अतिक्रमण करने में सफल हो जायेंगे। यह किया जा सकता है, परन्तु आपके पास उसकी चाबी होनी चाहिए। आपके शरीर में एक विशेष केन्द्र है जिसको संभालना और नियंत्रित रखना होगा।

आसक्ति और विरक्ति, स्नायविक असंतुलन और उत्तेजना, प्रत्येक चीज मनुष्य की चेतना से सम्बन्धित है। जब आपकी चेतना का विकास हो जाता है, प्रत्येक चीज सही दिखने में आती है, गड़बड़ियाँ गायब हो जाती हैं। घृणा, ईर्ष्या, प्रेम, सहानुभूति आदि भावनाएँ स्थायी वास्तविकतायें नहीं हैं। ये आपके साथ कुछ समय रहेंगी, कोई बात नहीं। आपको कितने ही डॉक्टरों या मनोचिकित्सकों के पास जाना हो, कोई चिन्ता नहीं। ये आपके साथ तब तक रहेंगी जब तक आप अपनी चेतना की वर्तमान स्थिति का अतिक्रमण नहीं कर लेते। एक उदाहरण देता हूँ। मैं यहाँ हूँ और आप भी यहाँ हैं, इसलिए मैं आपको देख रहा हूँ। मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता। यदि मैं आपको नहीं देखना चाहता तो मेरे लिए उचित यही है कि मैं इस हॉल से बाहर चला जाऊँ, हॉल का अतिक्रमण कर दूँ। इसी तरह कुण्डलिनी योग और क्रिया योग में चेतना के अतिक्रमण पर जोर देते हैं। व्यक्तिगत चेतना को बदल देना चाहिए, पलट देना चाहिए। यह पलटना तब सम्भव है जब चेतना स्वयं अपने प्रति सजग हो जाए। यही स्थिति निर्वाण, समाधि, कैवल्य, आत्मज्ञान, ईश्वर-साक्षात्कार आदि कई अन्य नामों से पुकारी जाती है। यही सर्वोच्च स्थिति है।

इस चेतना को अस्थायी रूप से तो आसानी से बदला जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि आप चिन्तित हैं तो बोतल खोलते हैं, थोड़ा-सा पीते हैं, और कुछ समय के लिए बिल्कुल ठीक हो जाते हैं। परन्तु दूसरे दिन सुबह फिर वही निराशा की स्थिति। पदार्थ के क्षणिक प्रभाव से चेतना की स्थिति को पलटने में कोई मदद नहीं मिलती है। न हशीश, न गाँजा, न एल.एस.डी., न ही कोई अन्य नशीली चीज आपकी चेतना में कोई स्थायी परिवर्तन ला सकती है। क्रिया योग, कुण्डलिनी योग और तन्त्र ही आपकी चेतना को बदल सकते हैं। चेतना का यह परिवर्तन प्रार्थना,

जप और अन्य अभ्यासों द्वारा धीरे-धीरे आयेगा। ये धीमी गति वाले रास्ते हैं, जैसा कि सिडनी से समुद्री मार्ग द्वारा भारत जाना। लेकिन कुण्डलिनी योग तथा क्रिया योग का अभ्यास ठीक उसी प्रकार से है जैसे जम्बो जेट द्वारा सिडनी से कोलकाता अगले दिन सुबह पहुँच जाना।

आप ध्यान की उच्च अवस्था में प्रवेश करना चाहते हैं तो पहले अपने मन को एक जगह स्थिर करो। यह चंचल मन आपको आगे नहीं जाने देगा, यह एक बहुत बड़ा अवरोध है। यह मेरा अनुभव है और उन सभी सन्त-महात्माओं का भी अनुभव है जो सदियों से इस मार्ग पर चलते आ रहे हैं। पहले अपने मन को क्रिया योग, कुण्डलिनी योग और तन्त्र योग द्वारा स्थिर करना होगा। इसके लिए और कोई मार्ग नहीं है। मैंने इन तीनों को अलग-अलग नाम दिये हैं, लेकिन वास्तव में ये सब एक ही हैं।

–मूलत: योग विद्या के फरवरी, 1977 अंक में प्रकाशित

इस समय हम जो हैं, वह हमारी चरम स्थिति नहीं है। मानव स्वयं को जितना समझता है, वह उससे कहीं अधिक है। योग के द्वारा वह अपनी चेतना के विकास के उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

नास्ति योगात्परं बलम्

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

घेरण्ड संहिता में राजा चण्डकापालि की योग सम्बन्धी जिज्ञासा सुनकर महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

नास्ति मायासमः पाशो नास्ति योगात्परं बलम् ।
नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुर्नाहंकारात्परो रिपुः ॥4॥

अर्थात् माया के समान दुनिया में कोई पाश नहीं और योग के समान संसार में कोई शक्ति नहीं। ज्ञान से बढ़कर कोई बन्धु नहीं और अहंकार से बढ़कर कोई शत्रु नहीं।

महर्षि घेरण्ड ने योग को समझाने के लिए चार विषयों को चुना है। पहला विषय है माया और पाश– *नास्ति मायासमः पाशः*। माया को पाश इसलिए माना गया है कि उसका अस्तित्व अस्थायी है, वह असत्य है और अज्ञान का प्रतीक है। जब व्यक्ति अज्ञान में रहता है, तब माया के वश में रहता है और माया के वशीभूत हो जीवन में सुख और भोग के पीछे दौड़ता है। सुख और भोग के पीछे दौड़ना और अपने आपको इस दौड़ में भूल जाना, अपने अस्तित्व को भूल जाना पाप का रूप माना गया है। अज्ञान में अपने आपको भूल जाना पाप है। विषयों में लिप्त होकर अपने आपको भूल जाना पाप है। अस्थायी जीवन का अनुभव करके, शाश्वत जीवन को भूल जाना पाप है, और इसका कारण है माया। इसीलिए महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि माया के समान दुनिया में कोई पाश नहीं है।

योग की शक्ति

नास्ति योगात्परं बलम्–योग के बराबर कोई शक्ति नहीं है। योग को महर्षि घेरण्ड ने शक्ति के रूप में देखा है, जिसके माध्यम से हम जीवन की सभी कमियों को दूर कर सकते हैं। शक्ति इसलिए माना है कि इसके द्वारा शरीर, मन, बुद्धि, विचार, व्यवहार, जीवन–सबको अपने नियन्त्रण में लाया जा सकता है, संयत और सन्तुलित बनाया जा सकता है। सम्भवत: दुनिया में ऐसा कोई विज्ञान नहीं है जो शरीर, मन और चेतना के विकास के लिए एक साथ कार्य करे। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में तो ऐसे किसी विज्ञान के बारे में सिखलाते ही नहीं हैं। इस युग में शरीर के विकास के लिए क्या बतलाते हैं? दण्ड बैठक करना, प्रात: दौड़ना या व्यायामशाला में जाकर कुछ व्यायाम करना, खेलना आदि। शारीरिक विकास के लिए सामाजिक मान्यता इतनी ही है। मानसिक विकास के लिए कोई पद्धति नहीं है, और बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा की पद्धति है। अत: समाज में मानसिक नहीं, बौद्धिक विकास होता है।

शारीरिक रोग को दूर करने के लिए अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं। एलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेद–ये सब शरीर को पदार्थ समझ कर ही इसकी चिकित्सा करती हैं। मानसिक रोग के लिए मनोविज्ञान ने कुछ तरीके निकाले हैं, किन्तु ये तरीके भी अभी प्रयोगात्मक स्तर पर हैं, सिद्ध नहीं हुए हैं। आधुनिक मनोविज्ञान की विचारधारा दो सौ साल पुरानी ही है, जिसे फ्रॉयड और युंग ने आधुनिक रूप में विकसित किया।

सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए समाज में तो शिक्षा मिलती नहीं है। हाँ, भारत में एक जमाना भले ही था, जब विद्यार्थियों को व्यक्तित्व विकास के तरीके बतलाये जाते थे, लेकिन आधुनिक जीवन में अब उसका भी कोई महत्त्व नहीं रह गया है। आप दुनिया के सभी देशों का चक्कर लगा लीजिए, सभी पद्धतियों को देख लीजिए, आपको कोई ऐसी विधि दिखलायी नहीं देगी, जो व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहयोग दे सके। महर्षि घेरण्ड ने इसी कारण कहा है कि दुनिया में योग से बढ़कर कोई शक्ति नहीं है। इसके माध्यम से व्यक्तित्व का

सर्वांगीण विकास हो सकता है। शारीरिक रोग सरल तरीके से दूर किये जा सकते हैं। मानसिक स्तर का विकास किया जा सकता है। बुद्धि की प्रतिभा को जाग्रत कर हम बुद्धि के क्षेत्र में भी विकास का अनुभव कर सकते हैं। स्थूल जीवन से सम्बन्धित अनुभव ही नहीं, बल्कि सूक्ष्म आन्तरिक अनुभव प्राप्त कर सकते हैं और उन अनुभवों का उपयोग कर सकते हैं।

ज्ञान ही सच्चा मित्र है

नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुः—ज्ञान से बढ़कर दुनिया में कोई मित्र नहीं है। सच्चा साथी ज्ञान है, क्योंकि कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी यही हमारा साथ देता है। एक कहानी आती है। दो आदमी जंगल से गुजर रहे थे। रास्ते में एक भालू मिला। एक आदमी दौड़कर पेड़ पर चढ़ गया। दूसरा आदमी चढ़ना नहीं जानता था। अचानक उसे ख्याल आया कि मरे हुए शरीर को भालू तंग नहीं करता, छूता भी नहीं है। वह तुरंत जमीन पर लेटकर मरे हुए व्यक्ति का अभिनय करने लगा। भालू आया, उसे थोड़ा सूँघा, इधर-उधर टटोला। वह आदमी एकदम मुर्दे की तरह पड़ा रहा और उसने अपने शरीर को हिलने-डुलने नहीं दिया। दो-तीन मिनट तक भालू ने उसे सूँघा और पंजे से हिलाया। वह आदमी मन पर नियन्त्रण रख शव की भाँति पड़ा रहा। कुछ समय बाद भालू परेशान हो गया। उसने सोचा, इसे मारने से क्या लाभ? यह तो पहले से ही मरा पड़ा है। यह सोच कर वह अपने रास्ते चला गया।

थोड़ी देर बाद पहला आदमी नीचे आया। जब भालू दूसरे आदमी को सूँघ रहा था तो उसने खोपड़ी, कान आदि सब कुछ सूँघा-टटोला था। इसलिए पहले आदमी ने, जो पेड़ पर चढ़ा था, मजाक किया, 'अरे! भालू ने तुम्हारे कान में क्या कहा?' तो दूसरे आदमी ने कहा, 'भालू ने मुझसे यही कहा कि ऐसे मित्रों पर कभी विश्वास नहीं रखना, जो समय पर तुम्हारा साथ न दें।'

यहाँ पर मित्र ने तो साथ दिया नहीं, ज्ञान ने ही साथ दिया। इसीलिए ज्ञान को सच्चा मित्र मानते हैं। विषम-से-विषम परिस्थिति में यदि कोई व्यक्ति हमारा साथ न भी दे, तो भी हमारा ज्ञान हमेशा साथ देता है। यह ज्ञान अविद्या को दूर करता है। जीवन में जितनी कठिनाइयाँ आती हैं, उनका मूल कारण तो यह अविद्या और अज्ञान ही है।

योग इस बात को स्वीकार नहीं करता कि मनुष्य अपने जीवन में प्रारब्ध के कारण कठिनाइयों का सामना करता है। योग कहता है कि यदि आपके भीतर पुरुषार्थ है, क्षमता है, तो आप सभी अवस्थाओं में सुखी रह सकते हैं। राजा हरिश्चन्द्र ने इतने कष्ट सहे, लेकिन फिर भी वे हमेशा कर्तव्यनिष्ठ रहे, सत्यवादी रहे। अन्त में उनकी कर्तव्यनिष्ठा और सत्याचरण ने ही उन्हें विजयी बनाया। ज्ञान से गौरव की प्राप्ति होती है।

अहंकार ही वास्तविक शत्रु है

नाहंकारात्परो रिपुः—अहंकार हमारे जीवन के सभी दोषों का मूल है। कोई व्यक्ति स्वयं को सर्वगुण-सम्पन्न से नीचे तो समझना ही नहीं चाहेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति मन में अपनी एक छवि बनाये रखता है कि मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं सब जानता हूँ, मैं समस्त गुणों से सम्पन्न हूँ, मेरे कार्य हमेशा ठीक होते हैं, मेरे विचार हमेशा ठीक होते हैं, मेरे सिद्धान्त सबसे अच्छे हैं। सामान्यतया मनुष्यों में यह प्रवृत्ति तो अवश्य ही देखी जाती है कि वे किसी के सामने झुकते नहीं। यह है 'अहं भाव'। यही अहं भाव जीवन में उनका सबसे बड़ा शत्रु बन जाता है, क्योंकि यह मित्रता में बाधक हो जाता है, यह शिक्षा पाने के भाव, सीखने के भाव को दबा देता है। ऐसे लोग अलग-अलग परिस्थितियों के अनुसार अपने को समायोजित नहीं कर पाते।

युवा पीढ़ी को बुजुर्गों से यही एक शिकायत रहती है कि मेरे पिताजी या मेरे बुजुर्ग लोग बहुत कट्टर हैं, उनके विचार नहीं बदलते हैं। वे लोग यह नहीं करते, वह नहीं करते। परिस्थिति और काल के अनुसार इस प्रकार के व्यक्ति अपने आपको बदल नहीं पाते। आँखों के सामने अहंकार का जो पर्दा रहता है, वह उनकी प्रतिभा के विकास को रोक देता है। उन्हें अपने ऊपर झूठा गर्व होता है। इसीलिए जीवन में माया और अहंकार को पाश और शत्रु के रूप में तथा योग एवं ज्ञान को शक्ति और मित्र के रूप में देखा गया है। यहीं से योग की शिक्षा शुरू होती है कि किस प्रकार हम अभ्यास के द्वारा योग शक्ति का प्रयोग करें, ज्ञान को अपना साथी बनायें, पाश से मुक्त हों और अहंकार रूपी शत्रु को अपने से दूर ही रखें।

समग्र दृष्टिकोण

महर्षि घेरण्ड का यह प्रथम पाठ या पहली शिक्षा है। इन चार विषयों पर चिन्तन-मनन करने से व्यक्ति के जीवन में जो कमियाँ हैं, वे दिखायी दे जायेंगी। युग चाहे जो हो, आधुनिक या प्राचीन, संसार में ज्ञान, माया, अहंकार और योग—इन चारों का पक्ष प्रबल होता है।

माया का अर्थ अविद्या या अज्ञान है, जिसके बन्धन में हम सब हैं। माया का व्यावहारिक रूप है—संकीर्णता, अहंकार, हमारी विचारधारा, जिसे हम सर्वोत्कृष्ट मानते हैं; हमारे सिद्धान्त,

हमारा जीवन, हमारा अस्तित्व, जिसके कारण हम विषयों और संसार के प्रति आकृष्ट होते हैं, संसार में अपने अस्तित्व को जमाने के लिए अपने आपको व्यवस्थित करते हैं। यह भाव एक बड़ा दुश्मन है। इसमें भी संकीर्णता का बोध हो रहा है, क्योंकि यदि व्यक्ति की चेतना विशाल हो, व्यापक हो, तो वह अहंकार के प्रभाव को भी कुछ हद तक नियन्त्रण में रख सकता है।

ज्ञान और योग, मित्र और शक्ति के रूप में देखे गये हैं। ज्ञान की आवश्यकता आज की आवश्यकता नहीं है। भले ही हम ज्ञान के अन्य रूपों को देखें, लेकिन जिस प्रकार से आदि मानवों ने, जो जंगलों एवं पर्वतों में रहते और शिकार करते थे, अस्त्र-शस्त्र का निर्माण किया, भाला, धनुष इत्यादि बनाये, वह भी तो ज्ञान की एक अभिव्यक्ति है। ज्ञान के माध्यम से हम अपने भीतर सुरक्षा का अनुभव करते हैं, आत्म-सन्तोष का अनुभव करते हैं, यह अनुभव करते हैं कि हम सभी प्रकार की परिस्थितियों एवं कठिनाइयों का सामना कर पायेंगे।

ज्ञान-पक्ष को आज के युग में हम लोग आन्तरिक और बाह्य दोनों मानते हैं। एक जमाने में ज्ञान का तात्पर्य बाह्य ज्ञान था। दूसरे जमाने में, दूसरी सभ्यता में ज्ञान का तात्पर्य आन्तरिक ज्ञान था। लेकिन आज की आवश्यकता के अनुसार ज्ञान में बाह्य और आन्तरिक अनुभूतियों का समन्वय होना चाहिए। तभी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के भीतर छिपी हुई अनन्त शक्ति का अनुभव कर सकता है, उसे जाग्रत कर सकता है।

योग को शक्ति या बल के रूप में देखा गया है। योग का दूसरा नाम पुरुषार्थ है। जब हम कुछ प्राप्त करने के लिए प्रयास करते हैं, पुरुषार्थ करते हैं, तब वह योग-साधना के रूप में परिणत होता है। यह पुरुषार्थ एवं साधना ही मनुष्य की आंतरिक उत्थानकारी शक्तियाँ हैं।

–'घेरण्ड संहिता' से उद्धृत

कुण्डलिनी योग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

कुण्डलिनी एक प्रबल, रहस्यमयी शक्ति है, जो सभी सजीव और निर्जीव पदार्थों का आधार है। मनुष्य शरीर के भीतर यही दिव्य शक्ति सदैव कार्यरत है। मेरुदण्ड के निचले भाग में मूलाधार चक्र में एक सर्प की भाँति प्रसुप्त इस उच्चतम शक्ति को जाग्रत करने पर ही योग में सिद्धि प्राप्त होती है। वह योगी वास्तव में राजाओं का राजा और सम्राटों का सम्राट् है, जिसकी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर सहस्रार चक्र तक पहुँच गई है। सभी ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ उसके पैरों तले लोटती रहती हैं। प्रकृति उसके वश में आ जाती है। वह पंच-तत्त्वों को नियंत्रित कर सकता है। उसकी कीर्ति वर्णनातीत है।

साधकों के लिए चक्रों और कुण्डलिनी शक्ति के बारे में जानने से पहले मेरुदण्ड और वहाँ अवस्थित नाड़ियों के विषय में कुछ जानना अनिवार्य है। गुदा द्वार और जननेन्द्रिय के बीच स्थित कन्द से लेकर कपाल के निचले हिस्से तक मेरुदण्ड का विस्तार है। मेरुदण्ड के दोनों ओर दो नाड़ियाँ, इड़ा और पिंगला स्थित हैं और इन्हीं दोनों के बीच में एक सूक्ष्म नाड़ी गुजरती है, जिसे सुषुम्ना कहते हैं। इसी सुषुम्ना नाड़ी के निचले छोर पर कुण्डलिनी शक्ति प्रसुप्त अवस्था में स्थित है।

इड़ा बायीं नासिका से बहती है और पिंगला दायीं से। इड़ा शीतल करती है, जबकि पिंगला उष्मा पैदा करती है। इड़ा और पिंगला से देश और काल की अनुभूति होती है, जबकि सुषुम्ना देश-काल के अनुभव को समूल नष्ट कर देती है। जब प्राण सुषुम्ना से होकर बहते हैं तब मन बिल्कुल स्थिर हो जाता है। प्राणों को इड़ा और पिंगला से खींचकर, उन्हें सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाकर योगी मृत्यु को चुनौती देता है। जब कुण्डलिनी जागृत होती है, उस समय अनेक अतीन्द्रिय अनुभव, विशिष्ट शक्तियों की उपलब्धि, ज्ञान, शान्ति तथा आनन्द का अनुभव होता है। जब कुण्डलिनी सहस्रार चक्र पर लायी जाती है तब योगी परमानन्द का आस्वादन करता है।

उड्डियान बन्ध का नियमित अभ्यास कुण्डलिनी को जाग्रत करता है और इसे सुषुम्ना मार्ग पर आरोहण के लिए प्रेरित करता है। यह एक प्रभावशाली यौगिक क्रिया है। कुण्डलिनी योग के सभी साधकों को इसे प्रतिदिन करना चाहिए। योग आसनों, प्राणायामों, मुद्राओं और बन्धों का अभ्यास केवल कुण्डलिनी जागृत करने के लिए निर्धारित किया गया है।

जैसे विद्युत-शक्ति को एक बैट्री में संचित किया जाता है, वैसे ही प्राण शक्ति का चक्रों और सुषुम्ना नाड़ी में संग्रह किया जाता है। सभी मनोकायिक प्रक्रियाओं में प्राण एक सक्रिय भूमिका निभाता है। कुण्डलिनी योग के नव अभ्यासी को सबसे पहले नाड़ियों का शुद्धिकरण करना है। नाड़ी-शुद्धि से सुषुम्ना के जागरण का मार्ग प्रशस्त होगा।

षट्चक्र

कुण्डलिनी योग के सभी साधकों को षट्चक्रों का स्पष्ट और गहन ज्ञान होना चाहिए। तभी वे इन चक्रों पर ध्यान कर सकते हैं। इन चक्रों पर ध्यान करने से उच्च अतीन्द्रिय शक्ति का अर्जन होता है। चक्र आध्यात्मिक ऊर्जा के केन्द्र हैं। वे वास्तव में कहाँ पर स्थित हैं, इस पर भिन्न-भिन्न मत हैं। डॉक्टर भौतिक शरीर का विच्छेदन करते हैं, लेकिन उन्हें कहीं पर भी चक्र दिखलाई नहीं पड़ते। कुछ लोग कहते हैं कि चक्र केवल सूक्ष्म शरीर में स्थित हैं। कुछ मानते हैं कि वे सूक्ष्म शरीर में नहीं हैं, बल्कि गहन चिन्तन करते समय ध्यान की शक्ति के द्वारा उन्हें विकसित किया जाता है। वास्तविक सत्य यह है कि चक्र सूक्ष्म शरीर के प्राणमय कोष में प्रसुप्त अवस्था में स्थित हैं और वे गहन, दीर्घकालीन ध्यान के माध्यम से खुलते हैं।

सुषुम्ना नाड़ी में स्थित छः चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा के नाम से जाने जाते हैं। इन सबके ऊपर सभी चक्रों का प्रधान सहस्रार चक्र है। सभी चक्र सहस्रार से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं, इसीलिए इसे सामान्यतया षट्चक्रों में सम्मिलित नहीं किया जाता। यह सारे चक्रों के ऊपर, सिर के शीर्ष भाग में स्थित है।

मूलाधार चक्र, मेरुदण्ड के निचले छोर पर जननेन्द्रिय से दो अँगुल नीचे तथा गुदाद्वार से दो अँगुल ऊपर स्थित है और इसकी चौड़ाई चार अँगुल है। जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया है, यहीं पर इड़ा और पिंगला सुषुम्ना से मिलती हैं। इस चक्र-कमल में लाल रंग की चार पंखुड़ियाँ हैं। इस कमल के अन्दर एक सुन्दर त्रिभुज में कुण्डलिनी प्रसुप्त अवस्था में निवास करती है। वह अपनी पूँछ को अपने मुख में दबाये और अपने सिर से सुषुम्ना के प्रवेशद्वार को ढके रहती है। जो योगी मूलाधार चक्र पर ध्यान केन्द्रित करता है, उसे कुण्डलिनी शक्ति तथा उसके जागरण के विभिन्न साधनों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जैसे ही कुण्डलिनी जागृत होती है, योगी को भूमि से ऊपर उठने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उसका अपने श्वास, मन और वीर्य पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है। उसके प्राण सुषुम्ना से होकर प्रवाहित होने लगते हैं और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उसको भूत, वर्तमान और भविष्य काल का ज्ञान हो जाता है। वह सर्वदा प्रसन्न रहता है।

स्वाधिष्ठान चक्र जननेन्द्रिय के ठीक पीछे सुषुम्ना के अन्दर स्थित है। इसकी छः पंखुड़ियाँ हैं। इस चक्र पर ध्यान करने वाला योगी जल के भय से मुक्त हो जाता है। उसे अनेक प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियों तथा अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति होती है। वह मृत्यु का विजेता बन जाता है और पूरे विश्व में निर्भय होकर विचरण करता है।

मणिपुर चक्र नाभि के ठीक पीछे सुषुम्ना के अन्दर स्थित है और इसमें दस पंखुड़ियाँ हैं। मणियों के समान अत्यधिक देदीप्यमान् होने के कारण इसे मणिपुर की संज्ञा दी गई है। इस उत्तम चक्र पर ध्यान संसार की सृष्टि और विनाश करने की शक्ति प्रदान करता है। वाणी की अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती हमेशा ऐसे योगी की जिह्वा पर विराजमान रहती हैं। उसे गुप्त खजानों का ज्ञान हो जाता है और सभी प्रकार की बीमारियों से मुक्ति मिल जाती है। उसे आग से कोई भय नहीं लगता। वह सिद्धों एवं ऋषि-मुनियों का दर्शन करने में सक्षम हो जाता है।

अनाहत चक्र हृदय क्षेत्र में स्थित है और इसकी बारह पंखुड़ियाँ हैं। इस चक्र में अनहत नाद, जो शब्द-ब्रह्म की मूल ध्वनि है, सुनाई देती है। इस चक्र पर नि:शब्द ध्यान करने से इस नाद को स्पष्ट सुना जा सकता है। जो योगी इस चक्र पर ध्यान करता है, उसे वायु तत्त्व पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। वह हवा में उड़ सकता है, किसी दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है। वह विवेकशील बन जाता है और केवल सत्कर्म करता है। विश्व-बन्धुत्व और सार्वभौम-प्रेम जैसे अनेक दिव्य गुण उसमें पल्लवित होते हैं।

विशुद्धि चक्र कण्ठ के आधार में सुषुम्ना के अन्दर स्थित है। इसकी सोलह पंखुड़ियाँ हैं। इस चक्र पर ध्यान योगी को सर्वोच्च सफलता दिलाता है। प्रलय के समय भी उसका नाश नहीं होता। उसे चारों वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह तीनों कालों का ज्ञाता बन जाता है। वह सुवक्ता, बुद्धिमान् और स्थितप्रज्ञ बन जाता है। अपनी यौगिक शक्ति से वह तीनों लोकों को हिला सकता है।

आज्ञा चक्र भ्रूमध्य के पीछे स्थित है। इसको त्रिकुटी भी कहते हैं। यह मन का निवास स्थान है। इसकी दो पंखुड़ियाँ हैं। जो योगी इस श्रेष्ठतम चक्र पर ध्यान करता है, वह अपने भूतकाल के सभी कर्मों का विनाश कर देता है और जीवनमुक्त बन जाता है। उसे आठ प्रधान और बत्तीस गौण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

सहस्रार चक्र सहस्र-दल-कमल है, जो सिर के शीर्ष स्थान पर स्थित है और भगवान शिव का निवास स्थान है। जब कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है, तब यह एक-के-बाद-एक सभी चक्रों को भेदती हुई अन्त में भगवान शिव से मिल जाती है और सर्वोच्च आनन्द का अनुभव कराती है। अब योगी दिव्य चेतना प्राप्त करता है और एक पूर्ण विकसित ज्ञानी बनकर अमरत्व का अमृतपान करता है।

कुण्डलिनी जागरण

जब कुण्डलिनी जागृत होती है तब यह एकाएक सहस्रार तक नहीं पहुँच जाती। इसे एक चक्र से दूसरे चक्र तक क्रमबद्ध तरीके से ले जाना होता है। तुम्हें यह बात याद रखनी चाहिए कि जागरण के बाद भी कुण्डलिनी किसी भी क्षण नीचे गिर कर मूलाधार पर आ सकती है। जब तुम समाधि में स्थापित होकर कैवल्यपद को प्राप्त कर लोगे, केवल तब कुण्डलिनी नीचे नहीं गिर सकेगी।

प्रिय बन्धुओं, कटिवात के कारण पीठ में उत्पन्न वात की गतिविधि को कुण्डलिनी का आरोहण समझने की गलती न करना। जब तक निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं होती तब तक धैर्य, दृढ़ता, प्रसन्नता और साहस के साथ अपनी साधना करते रहो।

कुण्डलिनी जागरण सरल है, परन्तु इस शक्ति को नाभि चक्र तक, वहाँ से आज्ञा चक्र तक और अन्त में सहस्रार तक ले जाना बहुत कठिन है। यह साधक से अत्यधिक धैर्य और दृढ़ता की अपेक्षा रखता है। जो योगी कुण्डलिनी को सहस्रार तक ले गया है, वह प्रकृति की शक्तियों का वास्तविक स्वामी है। प्राय: साधक कुछ मामूली अतीन्द्रिय अनुभव और शक्तियाँ प्राप्त होने पर अपनी साधना का परित्याग कर देते हैं। वे मूर्खतावश मान लेते हैं कि वे अपने लक्ष्य पर पहुँच गये हैं। यह एक बड़ी भूल है। पूर्ण निर्विकल्प समाधि ही अन्तिम मुक्ति प्रदान कर सकती है।

नए साधक अक्सर प्रश्न करते हैं, 'कुण्डलिनी को जागृत करने के लिए कितने समय तक शीर्षासन या पश्चिमोत्तानासन या कुम्भक या महामुद्रा का अभ्यास करना चाहिए? योग के किसी भी ग्रन्थ में इस बिन्दु पर उल्लेख नहीं है।' इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक साधक अपनी साधना का प्रारम्भ उस अवस्था से करता है जहाँ तक वह अपने पिछले जन्म में पहुँचा था। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा भी है–

अथवा योगीनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥6.42॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूय: संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥6.43॥

'मृत्यु के पश्चात् योग-साधक ज्ञानवान् योगियों के कुल में जन्म लेता है। वहाँ उसे पिछले शरीर में संग्रह किए हुए योग के संस्कार अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं और उनके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है।' इसलिए यह सब साधक की आन्तरिक शुद्धि, विकास-स्तर, वैराग्य और मुमुक्षुत्व पर निर्भर रहता है।

क्रिया योग के साधकों से

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

28 नवम्बर 1983 को सत्यानन्द आश्रम, मैंग्रोव माउण्टेन, ऑस्ट्रेलिया में उच्च क्रिया योग सत्र के उद्घाटन के अवसर पर दिया गया सत्संग

योग, तन्त्र और प्राय: अन्य सभी आध्यात्मिक पद्धतियों की विषय-वस्तु ऊर्जा है जो कई नामों से जानी जाती है। ऊर्जा शक्ति है और इसमें रूपान्तरण का गुण है। जैसे हम लकड़ी का एक टुकड़ा आग में डालते हैं और लकड़ी का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, वैसे ही हमें अपने शरीर को सूक्ष्म ऊर्जाओं के हवाले कर देना है। इस स्थूल पार्थिव शरीर को चेतना में रूपांतरित करने का दायित्व ऊर्जा पर है। यही हमें समझना है।

इसलिए योग, तन्त्र और अन्य आध्यात्मिक साधनाओं में शरीर, इन्द्रियों, प्राण-शक्ति और मन को ऊर्जा के अधीन करना पड़ता है। ऊर्जा वह अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण पदार्थ परिशोधित हो जाता है। जब यह पदार्थ पूर्णत: परिशोधित हो जाता है, तब यह चेतना का रूप ले लेता है। इसी उद्देश्य से यह उन्नत क्रिया-योग-सत्र आयोजित किया गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु ऋषि-मुनियों ने क्रिया योग के अभ्यासों का विकास किया था।

मिथ्या अवधारणाओं से उलझना

मन के साथ उलझ कर, उसे दमित और प्रताड़ित कर अथवा उसकी आलोचना या निन्दा कर हम किसी बिन्दु पर नहीं पहुँच सकते, इस बात को निश्चित जान लो। इसी कारण मन को दमित करने वाले विभिन्न मार्गों का अनुसरण करने वाले लाखों लोग विकास के किसी बिन्दु पर नहीं पहुँच पाये हैं।

विकास-क्रम दमन नहीं है, यह रूपान्तरण है। क्या तुमने खिलते पौधे को देखा है? बीजावस्था से विकसित होकर वह एक सुन्दर फूल को जन्म देता है। इसे रूपांतरण कहते हैं। उसी प्रकार मनुष्य की विकास-प्रक्रिया भी अबाधित रूप से चलनी चाहिए। सच तो यह है कि इस प्रक्रिया से मन को कुछ लेना-देना नहीं है। जब तुम पदार्थ को ऊर्जा के हवाले कर देते हो, इसी के साथ तुम अपना मन भी ऊर्जा को सौंप देते हो। और जब ऊर्जा भौतिक तत्त्वों का परिशोधन करती है तो वह मन को भी परिशुद्ध कर देती है।

यदि तुम सोचते हो कि मन द्वारा ही मन का परिशोधन किया जा सकता है तो तुम गंदगी को गंदगी से साफ करने की बात सोच रहे हो। तुम कचरे को कचरे से साफ नहीं कर सकते। उसे स्वच्छ जल से साफ करना पड़ता है। बहुत सारे लोग मन

से लड़ते आ रहे हैं। वे अपने विचारों, वासनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं एवं दुर्व्यसनों को दमित करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वे मिथ्या अवधारणाओं से, अवास्तविकताओं से लड़ रहे हैं।

इससे सम्बन्धित एक किस्सा याद आता है। एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर में बैठकर चाय पी रहा था कि उसके मित्र ने आकर कहा, 'मुल्ला नसरुद्दीन, मुझे तुमसे कुछ गोपनीय बात कहनी है। एक अति विश्वसनीय सूत्र से पता चला है कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे एक दोस्त से प्रेम करती है। हर रात बारह बजे वह तुम्हारे बगीचे में जाती है और वहाँ आम के पेड़ के नीचे दोनों मिलते हैं।'

मुल्ला नसरुद्दीन गुस्से से आग-बबूला हो गया और चिल्ला उठा, 'लानत है!' उसका मन बेकाबू हो गया। शाम होते-होते उसने अपनी राईफल साफ कर ली थी और आधा दर्जन बार गोलियों की जाँच कर ली थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह आता, राईफल और गोलियों की जाँच करता। छः बजते-बजते वह अपने बगीचे में उस आम के पीछे अपनी राईफल ताने हुए उस क्षण का इंतजार करने लगा कि जैसे ही वे दोनों आयें, वह घोड़ा दबा दे।

रात के दस बज गये, ग्यारह बज गये, बारह बज गये, लेकिन कोई आया नहीं। मुल्ला नसरुद्दीन ने मन-ही-मन कहा, 'आखिर बात क्या है? क्या उन दोनों को मालूम हो गया है कि मैं यहाँ उनका इंतजार कर रहा हूँ?' तब वह सोचने लग गया और सोचते-सोचते उसे याद आया कि अभी तक तो उसकी शादी ही नहीं हुई! मुल्ला घर लौट गया, राईफल से गोलियाँ निकालीं और आराम से सो गया।

मन से बोझ उतारना

वास्तव में हमें यही करना है। अपनी राईफल, जो हमने अपने मन में तान रखी है, उसे उतार लेना है, क्योंकि मन के बारे में हम अभी तक जो सोचते आ रहे हैं वह कपोल-कल्पना मात्र है। मन नामक कोई चीज नहीं है। हम समाज में रहते हैं और सामाजिक एवं पारिवारिक प्रभावों के अनुरूप एक विशेष साँचे में ढल गये हैं, जिसके अनुसार हम सोचा करते हैं। हमारे विचार, हमारा चिन्तन, हमारी वासनाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और इच्छाएँ मन से बिल्कुल सम्बन्ध नहीं रखतीं।

आजकल लोगों के पास मोटर कारें हैं, इसलिए हम लोग भी कार की इच्छा रखते हैं। हम हाथी रखने की इच्छा नहीं करते, क्योंकि

अब लोगों के पास हाथी नहीं रहा करते, मगर कई सौ साल पहले हम लोग हाथी की इच्छा करते। निश्चय ही उन दिनों हाथी रखना गौरव की बात थी। लोग कहा करते थे, 'कितना बड़ा आदमी है, उसके पास हाथी है!' अब तो हाल यह है कि हाथी रखने की बात ही नहीं सोचते, लेकिन हर आदमी के पास हैलिकॉप्टर होने लगे तो हम लोग कभी कार लेना नहीं चाहेंगे। ऐसा होता है न?

हमारी सभी इच्छाएँ बाहर गढ़ी जाती हैं और हमारे भीतर डाल दी जाती हैं। हम स्वतंत्र विचार करने वाले नहीं हैं, बल्कि सामाजिक कुसंस्कारों के पुतले हैं। हम सभी के दिमागों में कुसंस्कार भर दिये गये हैं। माता-पिता, शिक्षक, समाज, विज्ञापन, दूरदर्शन, समाचार-पत्र आदि सभी अपने विचारों को आरोपित करने में लगे हैं। हर समय हमारे मन को ब्रेन-वॉश किया जा रहा है। हम अपने मन के बोझ को हल्का करने के लिए ही आश्रम में आते हैं। जो भी हमारे मन में ठूँस दिया गया है उसे निकाल बाहर करना है। इसलिए क्रिया योग के साधकों को अपने मानसिक व्यवहार के संबंध में चिन्ता नहीं करना चाहिए। उन्हें मन की चिन्ता छोड़कर अपनी क्रियाओं को करते जाना चाहिए।

शिक्षण और सम्प्रेषण

आश्रम में प्रशिक्षण दो स्तरों पर एक ही साथ चलता है। एक शिक्षण है और दूसरा सम्प्रेषण। शिक्षक बाह्य रूप से तुम्हें क्रिया-योग की विधियाँ सिखायेगा, जबकि गुरु और शिष्य आंतरिक रूप से सम्प्रेषण विधि द्वारा ज्ञान एवं अनुभव आदान-प्रदान करेंगे। शिक्षक द्वारा क्रिया-योग के जो अभ्यास तुम्हें सिखाए जायेंगे वे तुम्हें उस स्तर तक उठा देंगे कि तुम गुरु द्वारा प्रेषित ऊर्जा को ग्रहण करने में सक्षम हो जाओगे।

गुरु और शिक्षक में अन्तर होता है। शिक्षक गुरु नहीं है, वह बौद्धिक स्तर पर अभ्यास सिखाता है। दूसरी ओर गुरु ऊर्जा, प्रेरणा और आवश्यक अनुभूतियों का स्थानांतरण एवं सम्प्रेषण करता है। साधक अपने शिक्षक की सहायता से अपने मानसिक ढाँचे को सुधार-सँवार कर ऐसा बनाता है कि वह अपने गुरु के साथ सीधा सम्पर्क साध सके।

आश्रम में शिक्षण एवं सम्प्रेषण, दोनों विधियों से विद्या प्रदान की जाती है। दीक्षा एक औपचारिकता भर नहीं है। दीक्षा गुरु और शिष्य के बीच आंतरिक शक्तियों का हस्तांतरण और सम्प्रेषण है। सदा इसी विधि से गुरु और शिष्य के बीच संबंध-सूत्र कायम रहा है। संक्षेप में क्रिया योग सीखने वाले साधकों तथा मेरे बीच यही संबंध है।

एक प्राचीन परम्परा

क्रिया योग एक अत्यंत शक्तिशाली विधि है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमें प्राप्त होती रही है। समय-समय पर महान् और प्रज्ञावान् गुरुओं द्वारा विभिन्न भू-खण्डों में इस विद्या का प्रचार किया गया। आज ही नहीं, अतीत काल में भी क्रिया योग की शिक्षा-दीक्षा होती थी। बाईबिल में एक स्थान पर एक सीढ़ी का वर्णन किया गया है जो धरती से स्वर्ग की ओर जाती है। तुम आधी दूरी सीढ़ियों पर आँखें बंद कर और आधी दूरी आँखें खोलकर पूरी करते हो। सीढ़ी के डण्डे क्रिया योग के विभिन्न अभ्यासों के प्रतीक हैं।

भारत में क्रिया योग तांत्रिक परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था। ईसाई मत के आगमन के बहुत पूर्व विश्व के कोने-कोने में तांत्रिक परम्परा पहुँच चुकी थी, किन्तु विभिन्न भू-खण्डों के लोग अपनी सांस्कृतिक सीमाओं और अपूर्णताओं के कारण तन्त्र की शुद्धता, महानता और भव्यता को नहीं बनाये रख पाये। फलस्वरूप, सुदूर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में विभिन्न कालों में इसके विकास में अवरोध खड़ा हुआ, किन्तु भारत में प्रबुद्ध लोगों ने पूरी समझ-बूझ के साथ तांत्रिक परम्परा को कायम रखा और साधकों, सद्गृहस्थों एवं संन्यासियों को सिखाते रहे। तांत्रिक विधियों में क्रिया योग को सर्वोत्तम माना जाता है।

न मैं क्रिया योग का संस्थापक होने का दावा करता हूँ और न यह स्वीकार करता हूँ कि अन्य कोई व्यक्ति संस्थापक है। हम लोगों को ठीक-ठीक यह पता नहीं है कि क्रिया योग का प्रवर्तक कौन था। जैसे विज्ञान के क्षेत्र में पीढ़ी-दर-पीढ़ी के वैज्ञानिकों द्वारा वैज्ञानिक सिद्धान्तों और प्रयोगों में सुधार लाये जाते रहे हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल से अनुभवी लोगों की परम्परा रही है जिन्होंने आंतरिक ज्ञान प्राप्त किया और अपनी स्थूल चेतना को उच्चतर चेतना में रूपांतरित कर लिया। इन्हीं लोगों ने क्रिया योग की निर्बाध परम्पराओं को कायम रखा है जिसका रूप आज हमारे सामने है।

मेरा योगदान इतना ही है कि पहली बार क्रिया योग के अभ्यासों को संकलित कर पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है। इसके पूर्व प्राचीन काल से अब तक विभिन्न ग्रन्थों में क्रिया योग के अभ्यासों के छिट-पुट प्रसंग उपलब्ध रहे हैं। विभिन्न ग्रन्थों एवं परम्पराओं में उपलब्ध ये अभ्यास एक-दूसरे से थोड़े-बहुत भिन्न हो सकते हैं, किन्तु यह भिन्नता साधकों की गुणवत्ता के कारण ही है।

उदाहरण के लिए, हम लोग महामुद्रा आधुनिक साधकों को उत्तानपादासन में सिखाते हैं। कुछ ग्रंथों में भी इसका उल्लेख है, किन्तु महामुद्रा का वास्तविक अभ्यास सिद्धासन में ही करना चाहिए। पर हर व्यक्ति इसे कर नहीं सकता। यदि साधकों को महामुद्रा और महाभेदमुद्रा सिद्धासन में करने के लिए कहा जाए तो उन्हें भारी पड़ जाता है। उत्तानपादासन चूँकि सरल रूप है, इसलिए इसका अभ्यास पहले किया जाता है और फिर बाद में उसे सिद्धासन में बताया जाता है।

मन की चिन्ता मत करो

क्रिया योग के उन्नत अभ्यासों को आरंभ करने के पूर्व तुम्हें एक सरल किंतु महत्त्वपूर्ण संकेत दे रहा हूँ—मन की चिन्ता मत करो! तुम अपनी क्रियाएँ करते जाओ और यदि तुम्हारे भीतर मन है तो उसे अपने क्रियाकलाप करने दो। मन को बिखरने दो, भटकने दो, बंदर की तरह उछलने-कूदने दो अथवा सो जाने दो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

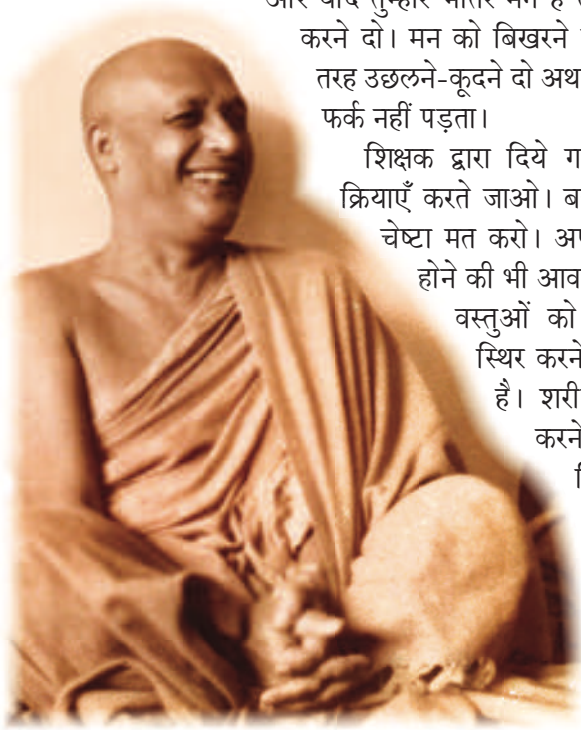

शिक्षक द्वारा दिये गये मार्गदर्शन के अनुरूप क्रियाएँ करते जाओ। बहुत आध्यात्मिक बनने की चेष्टा मत करो। अपने नेत्र खुले रखो। स्थिर होने की भी आवश्यता नहीं है। तुम विभिन्न वस्तुओं को देखते जाओ, नेत्रों को स्थिर करने की भी आवश्यकता नहीं है। शरीर एवं मन को भी शान्त करने की दरकार नहीं है। सिर्फ क्रियाओं का अभ्यास होना चाहिए और तुम पाओगे कि तुम्हारा ऊर्जा-क्षेत्र प्रभावित हो रहा है।

मैं हमेशा ऊर्जा क्षेत्र की बातें करता हूँ। मैं मानसिक क्षेत्र की बात

कभी नहीं करता, क्योंकि यह नसरुद्दीन की पत्नी की तरह है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। ऊर्जा एक वास्तविकता है और यह विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है। चाहे खनिज पदार्थ हो या पेड़-पौधा या पशु-पक्षी या मानव जीवन, चाहे शरीर हो या प्राण या मन, ये सारी चीजें ऊर्जा के प्रकट रूप हैं। जब ऊर्जा स्थूल रूप में प्रकट होती है वह पदार्थ कहलाती है और जब पदार्थ अपनी स्थूल परिसीमाओं से बाहर हो जाता है, वह ऊर्जा कहलाता है। यह शरीर, यह प्राण, मानसिक शक्तियाँ, विचार तरंगे, भावनाएँ सभी पदार्थ ही हैं। उन्हें आध्यात्मिक मत कहो। वे सभी पदार्थ हैं और इस पदार्थ का रूपान्तरण करना है।

पदार्थ का ऊर्जा में यह रूपान्तरण मन की सहायता से नहीं हो सकता। यदि तुम उन मार्गों का अनुसरण करोगे जिनकी यह मान्यता है कि रूपान्तरण मन की सहायता से हो सकता है तो तुम्हारा मुल्ला नसरुद्दीन जैसा ही हाल होगा जो अपनी राईफल तानकर अपनी कल्पित पत्नी और उसके प्रेमी की प्रतीक्षा में बैठा था। इसलिए मैं कहा करता हूँ कि मन की चिन्ता मत करो। इन्द्रियों की भी चिन्ता मत करो। बस अभ्यासों को करते जाओ और ज्यों-ज्यों तुम इस पथ पर आगे बढ़ोगे तुम्हें उन बातों की अनुभूति होनी शुरू हो जाएगी जो इन्द्रियों के परे हैं।

जब तुम क्रिया योग करते जाओगे तो क्या होगा? वह आदि शक्ति जिसे हम कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं, उसका प्रवेश सुषुम्ना मार्ग में होगा और वह ऊपर उठेगी। उस समय अनेक तरह की अनुभूतियाँ हो सकती हैं। ये अनुभूतियाँ मात्र मानसिक स्वप्न नहीं हैं, तुम्हारे अस्तित्व के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत विभिन्न ऊर्जाओं की झलकियाँ हैं। अभी तुम्हारे लिए यह जानना संभव नहीं कि ऊर्जा क्या है और वह मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कैसे कार्यरत है, लेकिन तुम इतना जरूर समझ सकते हो कि ये अनुभूतियाँ तब आती हैं जब तुम मन के साथ नहीं होते।

ऊर्जा की जागृति के फलस्वरूप सभी अंतरंग अनुभूतियाँ उच्चतर चेतना से उद्भूत होती हैं। मन से उत्पन्न अनुभूतियों, जैसे विषाद, निराशा, भय, चिन्ता, अशान्ति, अवसाद, वासना, महत्त्वाकांक्षा, घृणा आदि को तुम अच्छी तरह जानते हो। इस प्रकार मन से सैंकड़ों-हजारों अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं, किन्तु इतना जान लो कि उच्चतर ज्ञान और उच्चतर अनुभव मन से कभी उत्पन्न नहीं होते। प्रज्ञात्मक ज्ञान का मन से कुछ लेना-देना नहीं है।

क्रिया योग के साधक के रूप में तुम्हें सहज भाव से जीना है। यदि साधना के दौरान कोई समस्या या कोई मानसिक परेशानी होती है तो उसकी परवाह मत करो। इसमें हानि क्या है? यदि भय आते हैं, वासनाएँ आती हैं तो आयें। उनके साथ संघर्ष कर अपना समय नष्ट न करो। मन के रास्ते कोई समाधान नहीं प्राप्त हो सकता।

मन की समस्याएँ मुल्ला नसरुद्दीन की समस्याएँ हैं, बिल्कुल कपोल-कल्पित। मुल्ला को समझना चाहिए कि उसे अपनी पत्नी पर गोली दागने की

आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह वास्तव में है ही नहीं। इसी तरह हम भी गहन मानसिक सनक से पीड़ित हैं। मन के कार्यों के बारे में हम अत्यधिक तनाव में रहते हैं। हम सोचते रहते हैं, 'मैं अवसादग्रस्त हूँ, मैं क्रोधित हूँ, मैं ईर्ष्या का शिकार हूँ।' अपने बारे में हम इस तरह क्यों सोचते रहते हैं? इसके बदले हम योग की विभिन्न क्रियाओं में क्यों नहीं डूबते?

कर्म योग तुम्हारी ऐसी मानसिक समस्याओं में संतुलन लायेगा। ज्ञानयोग से यह संभव नहीं है क्योंकि जो लोग अपनी समस्याओं के प्रति अधिक सचेत एवं संवेदनशील हैं, ज्ञान योग का अभ्यास करने पर उनका स्नायविक तनाव अधिक बढ़ जायेगा। ज्ञान योग से अंतर्मुखता, विश्लेषण और चिन्तन-मनन की क्षमता में निखार आता है। ज्ञान योग से चिन्तन-विश्लेषण की क्षमता में वृद्धि होगी तो तुम अपनी समस्याओं के बारे में अधिकाधिक सोचने लग जाओगे। कर्म योग के अभ्यास से मानसिक समस्या संबंधी तुम्हारे सनक संतुलित होगी। क्रिया योग के मार्ग पर चलने वाले हर एक साधक को मैं यह संकेत दे दिया करता हूँ।

अनुभूति का जागरण

जब आंतरिक जागृति शुरू होती है तब मानसिक अनुभव कही जाने वाली हर चीज लुप्त हो जाती है। तब पूर्ण शान्ति आ जाती है। इस संबंध में एक कथा है। एक गुरु और शिष्य रात में सफर कर रहे थे। वे एक गुफा में आये और वहीं रात बिताना चाहते थे। चेला बड़ा डरपोक था। जब-तब वह कह देता, 'गुरु जी बड़ा अंधकार है, मुझे डर लग रहा है।' उसका डर दूर करने के लिए गुरु दियासलाई जला देते। थोड़ी देर चेला ठीक रहता, मगर अंधेरा होते ही फिर बड़बड़ाने लगता।

इस तरह रात भर गुरु दियासलाई जलाते गये। अंतत: सुबह हुई, सूरज निकला और चेले के डर का भूत भाग खड़ा हुआ। उसी भाँति जब अनुभूति अवतरित होगी तब मन की सारी समस्याएँ मिट जायेंगी। तब तुम्हें लगातार दियासलाई की तीलियाँ जलाने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि उससे कोई मदद नहीं मिलने वाली। तुम विगत कई वर्षों से यही करते आ रहे हो, अब इसे बन्द करो।

तुम्हारे शिक्षक इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के बारे में तुम्हें बतायेंगे। वे तुम्हें विभिन्न चक्रों तथा बीज-मंत्रों पर एकाग्र होने और शक्ति को जागृत करने के बारे में भी बतायेंगे। ऊर्जा-जागरण के फलस्वरूप तुम एक अपूर्व शान्ति एवं उदात्त मानसिक अवस्था का अनुभव करोगे। क्रिया योग के अभ्यास के दौरान मैं तुम्हारे लिए अच्छी अनुभूतियों की कामना करता हूँ। सत्संग की अवधि में मैं तुम लोगों से मिलने आऊँ या न आऊँ, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि हम लोग ऐसे स्तर पर एक-दूसरे के साथ सम्पर्क बनाये रखने का प्रयास करें जो मन से कहीं ऊपर है।

—योग प्रदीप-5 से उद्धृत

लय योग–उपनिषदों का क्रिया योग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग उपनिषदों में योग की एक शाखा की चर्चा आती है जिसे लय योग कहते हैं। लय योग सिद्धान्तत: क्रिया और कुण्डलिनी योग के समान ही है। क्रिया और कुण्डलिनी योग के अभ्यास चक्रों और नाड़ियों की जागृति के उद्देश्य से किये जाते हैं। उनका अधिक सम्बन्ध प्राणमय और विज्ञानमय कोषों के अनुभवों से रहता है। लय योग की तकनीकें मुख्यत: ध्यानात्मक हैं। वे चेतना की विविध अभिव्यक्तियों से सम्बन्धित होती हैं तथा शक्ति की अभिव्यक्ति के साथ उन्हें संयोजित करती हैं।

औपनिषदीय क्रिया योग

लय योग में भी मूलाधार से सहस्रार तक शक्ति के विकास और कुण्डलिनी के जागरण की व्याख्या क्रिया योग की तरह की गयी है। इसलिए इसे औपनिषदीय क्रिया योग कहा जा सकता है। लय शब्द का अभिप्राय विलीन होने से है। यहाँ क्या विलीन होता है? शक्ति तो विलीन होती नहीं, बल्कि वह तो जाग्रत होती है, और कुण्डलिनी योग में मन का विलय चक्रों से गुजरते समय होता जाता है। लय योग का तात्पर्य मात्र प्राणिक या मानसिक स्तर पर कुछ अनुभव प्राप्त कर लेने से नहीं है, बल्कि यह आत्मा को परमात्मा में पूर्णतया विलीन कर देना है। यह विलय चेतना की सामान्य वृत्तियों के रूपान्तरण में देखा जा सकता है। सांसारिक वृत्तियाँ ब्रह्माकार होती जाती हैं। लय योग का वास्तविक अनुभव इतना गहन होता है कि इसकी तुलना मृत्यु और पुनर्जन्म से की जा सकती है। मनुष्य के सीमित व्यक्तित्व का पूरी तरह विलय हो जाता है और चतना के एक नए आयाम में पुनर्जन्म होता है।

हम उपनिषदों के लय योग की तुलना यदि तन्त्र के क्रिया या कुण्डलिनी योग से करें, तो देखेंगे कि क्रिया और कुण्डलिनी योग शक्ति के साथ कार्य करते हैं। मूलाधार से सहस्रार तक धीरे-धीरे शक्ति का उत्थान होता

है, और शक्ति का यह उत्थान ही कुण्डलिनी की अनुभूति है। तथापि यह जागरण दो भिन्न क्षेत्रों में होना चाहिये—एक शक्ति का क्षेत्र है और दूसरा है चेतना का क्षेत्र।

कुण्डलिनी योग में मन और चेतना से सम्बन्धित अनुभवों से कतराकर निकल जाने की प्रवृत्ति पायी जाती है। उसमें चेतन अनुभवों का निषेध नहीं है, बल्कि चक्रों की जागृति तथा इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना शक्तियों के प्रवाह के निदेशन पर अधिक बल दिया जाता है। दूसरी तरफ, लय योग में शक्ति के जागरण के साथ-साथ साधक को चेतना के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों का अवलोकन करना चाहिये। ये परिवर्तन रूपान्तरित चिन्तन और विश्लेषण प्रक्रिया तथा रूपान्तरित सजगता के रूप में प्रकट होते हैं।

कुण्डलिनी योग में शक्ति के प्रवाह और अभिव्यक्ति पर एकाग्रता का प्रयास किया जाता है, न कि चेतना के स्तर पर हो रहे परिवर्तनों की सजगता पर। यहाँ मान्यता यह है कि शक्ति के रूपान्तरण के फलस्वरूप चेतना के स्तरों पर होनेवाले परिवर्तन स्वयमेव सन्तुलित हो जायेंगे। लय योग में मन, इन्द्रियों और भावनाओं की स्वाभाविक बहिर्मुखी प्रवृत्ति को पूरी तरह नियंत्रित कर लिया जाता है। मन में बचे शेष संस्कार भी समाधि की ओर ही उन्मुख करते हैं।

चेतना के लोक

लय योग में चेतना का अवलोकन अधिक गहराई से किया जाता है, और शक्ति केवल एक माध्यम होती है जिससे चेतना के अन्दर परिवर्तन घटित होते हैं। कुण्डलिनी योग का सम्बन्ध सात प्रमुख चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार, तथा अन्य गौण चक्रों से रहता है। दूसरी तरफ, लय योग का सम्बन्ध सात लोकों से है—भूलोक, भुवः लोक, स्वः लोक, महः लोक, जनः लोक, तपः लोक और सत्य लोक। इन सात लोकों को सात चक्रों के समकक्ष माना जा सकता है। ये सात लोक चेतना की विभिन्न उत्कृष्ट अवस्थाओं के प्रतीक हैं जिनका कुण्डलिनी के जागरण होने पर अनुभव होता है।

ऋतम् और सत्यम्

चेतना के दो पहलू हैं—ऋतम् और सत्यम्, जिनका सम्बन्ध व्यक्त या परिवर्तनशील और सत्य या अपरिवर्तनशील सत्ता से है। व्यक्त या परिवर्तनशील आयाम में किस प्रकार के परिवर्तन होते हैं? इल्ली का तितली में रूपान्तरण इसका एक उदाहरण है। इल्ली का रूप उतना ही वास्तविक है जितना कि तितली के रूप में उसका रूपान्तरण। तितली को देखकर हम यह नहीं कह सकते कि इल्ली एक भ्रम है और न इल्ली को देखकर यह कह सकते हैं कि तितली एक भ्रम है। परिवर्तनशील आयाम में दोनों यथार्थ हैं। हमारी जीवन-प्रक्रिया भी परिवर्तनशील आयाम का

एक अंग है। हम वही व्यक्ति हैं, फिर भी प्रतिदिन, प्रतिवर्ष और अपने जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में हम भिन्न-भिन्न हैं। बाल्यावस्था में हमारा शरीर भिन्न प्रकार का था। हम केवल इसलिये अपने बचपन को अस्वीकार नहीं कर सकते कि हम बढ़े हो गये हैं। जब हम छोटे थे उस समय वही हमारा यथार्थ था।

अपरिवर्तनशील सत्ता जीवन का सार है, जीवनी शक्ति या चेतना है। अपनी बाल्यावस्था में भी हमने इसका अनुभव किया था, अभी भी कर रहे हैं और अपनी वृद्धावस्था में भी करेंगे। जब इस अपरिवर्तनशील सत्ता, अर्थात् सत्यम् का सामना विभिन्न परिस्थितियों से होता है, जो इस चेतना की अभिव्यक्ति को तदनुकूल रूपान्तरित कर देती हैं, तो उसे परिवर्तनशील सत्ता यानि ऋतम् कहा जाता है। चेतना के विभिन्न प्रारूप और अभिव्यक्तियाँ जो विभिन्न चक्रों की जागृति के साथ रूपान्तरित होते हैं, ऋतम् के विभिन्न पहलू हैं जिनका तप: तक के छ: लोकों में अनुभव होता है। सातवाँ लोक सत्य लोक है, जहाँ शिव तत्त्व के रूप में परम चेतना या सहस्रार का अनुभव होता है। लय योग का यही सिद्धान्त है।

लय योग के व्यावहारिक पहलू

लय योग का एक अन्य पहलू उससे सम्बन्धित अभ्यास हैं। ये अभ्यास क्रिया या कुण्डलिनी योग के अभ्यासों के सदृश ही हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि प्रत्येक अवस्था के साथ एक ध्यानात्मक अभ्यास जोड़ दिया जाता है जो शक्ति की बजाय चेतना के स्तर पर हो रहे परिवर्तनों के प्रति हमें सजग करता है। जागृति की प्रत्येक अवस्था या प्रत्येक लोक के अनुभव में कुछ चीजों का अवलोकन किया जाता है तथा चेतना के अनुभव का विभिन्न इकाइयों में विच्छेदन किया जाता है।

सर्वप्रथम शारीरिक, बौद्धिक, प्राणिक और भावनात्मक स्तरों पर होनेवाले सम्पूर्ण अनुभव तथा हमारे व्यवहार, चिन्तन, क्रियाकलाप और अन्त:क्रियाओं आदि पर उसके प्रभावों का अवलोकन किया जाता है। इस सम्पूर्ण तस्वीर को खींचने के बाद हम भावनात्मक अनुभव को अलग करके देखते हैं कि वह अनुभव चेतना को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है, हमारे मानसिक और बाह्य कार्यकलापों को किस प्रकार रूपान्तरित कर रहा है। मान लीजिये कि हमने मूलाधार की क्षमता को जाग्रत कर लिया है। हम जानते हैं कि मूलाधार के सक्रिय होने पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के अनुभव प्रकट होते हैं। नकारात्मक अनुभव के अनेक रूप हो सकते हैं–संवेदनशीलता, असुरक्षा एवं कामवासना के भाव अति तीव्र हो जाते हैं, ऐसे सम्बन्ध की इच्छा बढ़ जाती है जिसमें हम अपने को सुरक्षित अनुभव कर सकें।

हम इन अनुभवों को नकारात्मक कहते हैं, किन्तु वस्तुत: वे हमारे बाह्य जीवन से सम्बन्धित होते हैं। मूलाधार की जागृति के परिणामस्वरूप अपने अन्दर अनुभूत लालसाओं की पूर्ति हम किस प्रकार करते हैं? अपने बाह्य जीवन में निरंकुश बनना ही प्राय: एकमात्र मार्ग प्रतीत होता है। फिर भी जब हम लय योग का अभ्यास करने लगते हैं तो इन विभिन्न भावनाओं के लिये कुछ सम्पूरक गुण भी जागृत होते हैं। यदि असुरक्षा का भाव तीव्रता से प्रकट हो रहा है तो अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा पूरक कारक विकसित किये जाते हैं ताकि रिक्तता का अनुभव न हो सके। तीव्र वासना की स्थिति में अवलोकन की प्रक्रिया द्वारा एक अन्य पूरक गुण विकसित किया जाता है। इस ध्यानात्मक प्रक्रिया द्वारा मन को तीव्र इच्छा के फन्दे से अन्यत्र निदेशित करने की शिक्षा दी जाती है।

स्वाधिष्ठान की जागृति होने पर संस्कार प्रबल रूप से प्रकट होते हैं। बाह्य दृष्टिकोण से वे चार मूल प्रवृत्तियों–आहार, भय, निद्रा और मैथुन से सम्बन्धित होते हैं। इन संस्कारों का नियन्त्रण या निर्मूलन कैसे किया जाय? सबसे पहले, हठ योग, क्रिया योग और कुण्डलिनी योग के अभ्यासों के माध्यम से संस्कारों का विस्फोट, उनकी प्रबल अभिव्यक्ति की जा सकती है। फिर उनके प्रभावों को, उनकी शक्ति को सकारात्मक दिशा प्रदान की जाती है, जिसमें कर्म योग और भक्ति योग की साधनाएँ काम में आती हैं। अंत में लय योग की ध्यानात्मक विधि उपयुक्त की जा सकती है जिसके अंतर्गत चिन्तन, मनन और तर्क की प्रक्रिया शामिल रहती है। इस प्रकार प्रत्येक चक्र के साथ ऐसे विशिष्ट स्तर पर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है जो शक्ति से भिन्न होता है।

ऊर्ध्वमूल वृक्ष

योग के शुद्ध वेदान्तिक पक्ष में मूलाधार और विशुद्धि चक्र का विशेष महत्त्व है। वास्तव में विशुद्धि चक्र का किसी ऐसे जीवन अनुभव से संबंध नहीं जिससे हम

सामान्य जीवन में परिचित हों। बल्कि हम कह सकते हैं कि विशुद्धि जीवन का बीज है, कारण शरीर है जिससे विभिन्न भौतिक शरीर जन्म लेते हैं। यही वह बीज है जिससे गीता में वर्णित ऊर्ध्वमूल वृक्ष अपनी शाखा-प्रशाखाओं के साथ उत्पन्न हुआ है।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में इस वृक्ष का बड़ा सुन्दर काव्यात्मक वर्णन किया गया है। यह वृक्ष, जिसकी जड़ें ऊपर की ओर तथा शाखाएँ नीचे की ओर बढ़ती हैं, जीवन के विकास-क्रम को दर्शाता है। इस वृक्ष का मूल आकाश तत्त्व है जो सृष्टि में उत्पन्न होने वाला प्रथम तत्त्व है। इसी तत्त्व से अन्य तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। अनाहत चक्र इस वृक्ष के तने का प्रतीक है, और मणिपुर चक्र इस वृक्ष की शाखाओं का। जिस प्रकार शाखाएँ हर दिशा में फैलती हैं उसी तरह मणिपुर चक्र से जीवनी शक्ति शरीर के हर भाग में पहुँचकर हमारा पालन-पोषण करती है। इस वृक्ष के लाखों पत्ते स्वाधिष्ठान चक्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये पत्ते कर्माशय के प्रतीक हैं, जहाँ हमारे कर्म चेतना की गहराइयों में पड़े हैं और हम उनका अर्थ नहीं जानते। वृक्ष के फल मूलाधार चक्र के द्योतक हैं।

अगर विशुद्धि जन्म और सृष्टि का प्रतीक है तो मूलाधार मृत्यु और जड़ता का। योग के वेदान्तिक दृष्टिकोण में स्रोत तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है। वह स्रोत विशुद्धि है। वहाँ सब-कुछ शुद्ध है, नया है। लय योग में ऐसी विशिष्ट ध्यानात्मक विधियाँ हैं जो इस संसार से हमारे आकर्षण और बंधन के कारणों को समझने का प्रयास करती हैं। ध्यान से उत्पन्न ज्ञान हमें मूलाधार के आयाम से ऊपर उठाकर विशुद्धि के शुद्ध आयाम की ओर ले जाता है।

मूलाधार एक विलक्षण चक्र है क्योंकि इसी चक्र में असीम सम्भावनाएँ निहित हैं। यह वह चक्र है जो मनुष्य को कर्म और संस्कार के बन्धन से इतनी मजबूती से बाँध सकता है कि उसे तोड़ना असम्भव हो जाता है। लेकिन साथ ही यह एक ऐसा चक्र भी है जिसे यदि सही ढंग से समझा और संचालित किया जाए तो आप अपनी चेतना की गहराइयों में उतर सकते हैं तथा पूर्ण विलय के बाद विशुद्धि के स्तर पर पुनर्जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

पूर्ण विलयन

संस्कारों और कर्मों के बन्धन में पड़ना जीवन का स्वाभाविक मार्ग है। इसे ही जन्म-चक्र में फँसना कहा जाता है। 'भज गोविन्दम्' में आदि शंकराचार्य कहते हैं– *पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम्।* हम बार-बार जन्म लेते हैं, बार-बार मरते हैं और पुनः माता के गर्भ में शयन करते हैं। यह जीवन का प्राकृतिक पथ है। इसके विपरीत है लय योग का परम मार्ग। इसमें मूलाधार-चेतना को इस प्रकार तथा इस हद तक प्रभावित किया जाता है कि मूलाधार की शक्ति हमें जन्म-मृत्य के चक्र से बाहर धकेल देती है।

कुण्डलिनी या क्रिया योग मध्यम मार्ग है। हर व्यक्ति में उस मानसिकता, इच्छा-शक्ति या ऊर्जस्विता का होना सम्भव नहीं है जिसके बल पर वह मूलाधार का पूर्ण अनुभव करते हुए अन्य समस्त स्तरों से बचकर निकल सके। चूँकि हममें उस ऊर्जस्विता की कमी है, अत: हम वृक्ष पर उलटी दिशा से चढ़ना प्रारम्भ करें। शाखाओं से होते हुए हम तने तक आते हैं, उसे कसकर पकड़ते हैं तथा धीरे-धीरे वृक्ष के मूल तक चढ़ना प्रारम्भ करते हैं। यह कुण्डलिनी योग है। प्रत्येक कदम या सोपान पर एक पत्ती, टहनी या शाखा होती है, किसी-न-किसी प्रकार का सम्बल रहता है। ज्यों ही यह सम्बल छूटता है, आप लय या पूर्ण शून्यता की अवस्था में पहुँच जाते हैं।

पूर्व काल में श्रेष्ठ ऋषि-मुनि और दृढ़ निश्चयी साधकगण ही लय योग की इस पद्धति का उपयोग करते थे जो पहाड़ के ऊपर से शून्य में छलांग लगाने के समान है। योग में तीन प्रकार के व्यक्तित्वों की चर्चा होती है—पशुभाव, वीरभाव और दिव्यभाव। पशुभाव और वीरभाव वाले साधक योग की अन्य शाखाओं से सम्बन्धित अभ्यास करते हैं। लय योग का अभ्यास दिव्यभाव वाले साधक ही करते हैं, क्योंकि वे ही इस अभ्यास हेतु आवश्यक दृढ़ संकल्प, क्षमता और शक्ति से युक्त होते हैं।

लय योग वह प्रक्रिया है जहाँ विलय घटित होता है, केवल मन या प्राण का नहीं, बल्कि इस व्यक्त संसार में अभिव्यक्त सम्पूर्ण जीवनी-शक्ति का। ऋतम् से तादात्म्य छूटता है और सत्यम् से जुड़ता है। वैदिक योग परम्परा में लय योग का इसी रूप में वर्णन किया गया है। साधना में नियमितता, संकल्प की दृढ़ता और वैराग्य की तीव्र भावना के द्वारा धीरे-धीरे, यथासमय वह क्षमता, वह शक्ति विकसित होती है, जो हमें व्यक्त जगत् के अनुभवों से अलग करके विशुद्ध चेतना की शांति, उसकी उज्ज्वल कांति में प्रवेश दिलाती है।

—'योग दर्शन' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

काश्मीर सूफी लोगों की भूमि है। वहाँ लोग बहुत शताब्दियों तक शान्ति से रहे हैं। अब तो राजनैतिक मुद्दा हो गया है, नहीं तो काश्मीर के मुसलमान अन्य मुसलमानों की तरह नहीं हैं, न वहाँ के हिन्दू दूसरे हिन्दुओं की तरह हैं। सूफी विचारधारा, शैव-धर्म और तंत्र—ये तीनों काश्मीर की संस्कृति में घुले-मिले हैं। यहाँ जो पाठा वगैरह कटता है, यह असली तंत्र नहीं है, यह तो गंवार लोगों का तंत्र है। शराब पी ली, पाठा काट दिया, मुर्दे की खोपड़ी रख ली और बोल दिया कि हम तांत्रिक हैं, यह तो लोगों को बेवकूफ बनाने का तरीका है। मगर काश्मीर का तंत्र और शैव दर्शन बहुत उच्च कोटि का है।

शिव जी का सम्प्रदाय दो जगह बहुत अच्छे से पनपा, एक तो काश्मीर में, दूसरा दक्षिण भारत में। दक्षिण भारत में शैव सम्प्रदाय बहुत प्रभावशाली रहा है। वहाँ शैव मत में बहुत संत पैदा हुए हैं। हमलोगों के यहाँ सम्प्रदाय को एक दर्शन के रूप में देखते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि शैव होने पर ही तुम शैव सिद्धान्त का अध्ययन करो। तुम चाहे ईसाई हो या मुसलमान, तुम शैव सिद्धान्त का अध्ययन कर सकते हो, क्योंकि शैव सिद्धान्त एक दर्शन है। दर्शन का क्या आधार होता है? जो नहीं दिखाई देता है, जो अव्यक्त तत्त्व है, वह कौन है? परमात्मा का जो व्यक्त स्वरूप है वह तो दिखता है—सृष्टि दिखती है, जीव-जन्तु सब दिखते हैं, मगर पंचभूतों के परे जो परमात्मा का स्वरूप है, जो उनका मूल आर्य रूप है, वह कैसा है? वह एक है या अनेक है? दर्शन-शास्त्र इस तरह के प्रश्नों पर चिंतन करता है।

जो परम तत्त्व है, वह अजन्मा है, कभी पैदा नहीं हुआ, इसलिये अविनाशी है। वह अकर्ता भी है। अकर्ता का मतलब कुछ नहीं करना। यह दर्शन का मूल सिद्धान्त है। अब प्रश्न उठता है कि अगर परमात्मा अकर्ता है तो फिर यह सब करता कौन है? सृष्टि किस का कार्य है? प्रारब्ध-पुरुषार्थ किसका कार्य है? सुख और दु:ख का बन्धन उत्पन्न करने वाला कौन है? बस विवाद इसमें है। अगर यह मानो कि परमात्मा ही करता है तो फिर प्रश्न उठता है कि क्यों करता है। इस विषय पर दर्शन-शास्त्र ने बहुत चिन्तन किया है।

शैव-सिद्धान्त में तीन चीजें देखने को मिलती हैं—ईश्वर, जीव और जगत्। ईश्वर याने शिव जी, जीव याने तुम या हम, और जगत् अर्थात् यह सारी सृष्टि। परन्तु ये जो तीन चीजे हैं, इनका मूल कहाँ है? तुम्हें वृक्ष दिखाई देता है, उसकी दो-चार सौ डालियाँ हैं, पर उसका मूल कहाँ है? मूल तो नीचे है जिससे कई शाखाएँ निकलीं। बस इसी पर लोग चिन्तन करते गये, फिर भी अन्त में पार नहीं पाया। किसी ने कहा यह पुरुष-प्रकृति का खेल है तो किसी ने कहा ब्रह्म-माया है।

उसमें भी प्रश्न आ गये। अगर परमात्मा संसार की सृष्टि प्रकृति को आधार बनाकर करता है तो प्रकृति को किसने पैदा किया? इसके जवाब में दार्शनिक कहते हैं, 'नहीं, प्रकृति तो परमात्मा का एक स्वरूप ही है।'

जब दर्शन-शास्त्र में ऐसा चिन्तन करते गये और प्रश्नों के उत्तर देते गये तो हर उत्तर पर एक प्रश्न उठता गया। दार्शनिकों ने, विद्वानों ने, ऋषि-मुनियों ने जो भी उत्तर दिया, उस पर एक नया प्रश्न उठता गया। अन्त में थककर उन्होंने कहा, 'ठीक है, इसका कोई अन्त नहीं है। ईश्वर अज्ञेय है।' जिस चीज को जान नहीं सकते उसके बारे में फिर वाद-विवाद क्यों करना? जब कह ही दिया कि ईश्वर ज्ञान का विषय नहीं है तो फिर ज्ञान की चर्चा ही क्यों करना? तब उन्होंने उपासना मार्ग अपनाया। उपासना मार्ग याने भक्ति। दक्षिण भारत में भक्ति पंथ चला, सूफियों ने भी भक्ति पंथ को अपनाया। भक्ति का मतलब यह हुआ कि भगवान क्या हैं, कौन हैं, कैसे हैं, कहाँ हैं, क्यों हैं, यह सब पूछना बन्द करो। तुम भगवान को जैसा समझते हो वैसे ही उसकी उपासना करो। भगवान को अगर साकार समझो तो साकार की उपासना करो, अगर तुम भगवान को गुरु के रूप में देखना चाहो तो गुरु की उपासना करो। अर्थात् तुम्हारी खोपड़ी में भगवान जितना अटे हैं, उसी की उपासना करो। जो खोपड़ी में अटा नहीं उसको छोड़ दो। भक्ति में बस यही है।

काश्मीर के मुसलमानों में बहुत सूफी लोग हैं। उनमें एक बहुत बड़े ऋषि थे, जिनका नाम था नन्द ऋषि। वे मुसलमान थे, उनके जन्म की विचित्र-विचित्र कहानियाँ हैं। वे बहुत गरीब घर में पैदा हुए थे, पर वहाँ के लोग उन्हें बहुत मानते हैं। सूफी संतों को वहाँ काफी पूजा जाता है। वहाँ हिन्दू भी जाते हैं, मुसलमान भी। धर्म का जो यह झगड़ा है, वह तो राजनीतिज्ञों का बनाया हुआ है। असल में

झगड़ा कुछ नहीं है। अगर ये सब राजनीतिज्ञ न रहें तो झगड़ा आज खत्म हो जाए, जैसे शैवों और वैष्णवों का या वैष्णवों और शाक्तों का झगड़ा खत्म हो गया है।

अब देखो, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों में कितनी दूरी है। वैष्णव लहसुन-प्याज तक नहीं खाते और शाक्तों की मांस-मदिरा के बिना पूजा नहीं होती। फिर भी देखो, एक ही मन्दिर में दोनों देवी-देवता हैं, एक साथ ही पूजे जा रहे हैं। नहीं है क्या? इतनी दूरी होने पर भी दोनों सम्प्रदायों के देवता एक ही मन्दिर में विराजते हैं और दोनों की पूजा हम एक साथ करते हैं।

इसी तरह अगर हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म में तुलना की जाए तो कोई खास फर्क नहीं है, न आचार में, न विचार में। वे कहते हैं–'ला इल्लाहा इल अल्लाह', मतलब भगवान के अलावा कुछ नहीं, और हम लोग कहते हैं–'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'। वे भक्ति और प्रार्थना पर जोर देते हैं, हम भी उसी पर जोर देते हैं। वे लोग इबादत कहते हैं, हम लोग आराधना कहते हैं। धार्मिक या सैद्धान्तिक मतभेद तो कुछ भी नहीं है। जो भी मतभेद है उसका कारण राजनीति है और कुछ नहीं।

यह मतभेद क्यों और कैसे आया?

देखो जी, हर राजनीतिज्ञ को अनुयायियों की जरूरत पड़ती है। उस समय लड़ने के लिये जरूरत पड़ती थी, आज निर्वाचन में जरूरत पड़ती है। उस समय जितने ज्यादा लोग उनकी पलटन में रहते थे, उतनी उनकी जीत होती थी। अब तुम्हारी लड़ाई में तुम्हारे साथ कौन आयेंगे? जिनको तुम फँसा सकोगे। मुसलमान ने मुसलमानों को, हिन्दू ने हिन्दुओं को, ब्राह्मण ने ब्राह्मणों को और क्षत्रिय ने क्षत्रियों को फँसाया। जाति, भाषा और धर्म के बल पर उन लोगों ने अपना-अपना संगठन बनाया। उसी संगठन के आधार पर उस वक्त युद्ध होते थे जो आज बैलट-बॉक्स में होते हैं। राजनीति के कारण जो झगड़ा होता है वह तो सदा से चला आ रहा है। अभी तो हिन्दू-मुसलमान के बीच में हो रहा है, पहले शैवों और वैष्णवों के बीच में, हिन्दुओं और जैनों के बीच में, हिन्दुओं और बौद्धों के बीच हुआ। अगर पुराणों को ठीक तरह से पढ़ो तो मालूम पड़ेगा कि भयंकर युद्ध हुए हैं, मार-काट हुई है, मन्दिर नष्ट हुए हैं। जनसंख्या का बड़े पैमाने पर स्थानांतरण हुआ है। लोग एक जगह से दूसरी जगह भाग जाते थे। शैव लोग राज करने लगे तो वैष्णव लोगों को हटा दिया। वैष्णव लोग राज करने लगे तो शिव जी को हटा दिया। बौद्ध आए तो नारायण को हटा दिया, जैन आए तो राम को हटा दिया। यह तो हमेशा चला है। अब हम लोग नहीं कहते हैं क्योंकि पहले ही झगड़ा काफी है, और झगड़ा क्यों बढ़ाएँ? लेकिन इतिहास इसका साक्षी है। बहुत पुराने इतिहास की बात छोड़ो, आज से करीब तीन-चार सौ साल पहले की बात है, अप्पय दीक्षित दक्षिण भारत के बहुत बड़े शैव विद्वान् रहे हैं। वे तिरुपति में भगवान का दर्शन करने गये तो

उन्हें अनुमति नहीं मिली। वे शैव थे, इसलिये उन्हें अन्दर जाने ही नहीं दिया। यह राजनीति ही तो है।

हमें राजनीति से कोई मतलब नहीं, हम दार्शनिक चर्चा करते हैं। हम विवाद की बातें नहीं कर रहे हैं, हम विभिन्न दर्शनों और मतों में समानता बताने की कोशिश कर रहे हैं। वैदिक दर्शन हो या इस्लाम, दोनों का आपस में कोई विशेष भेद नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि वैदिक दर्शन में विद्वानों ने ईश्वर के बारे में जितनी गहराई से चिन्तन किया, ईश्वर के बारे में जो तर्क-वितर्क और चर्चा हुई है, वह इस्लाम या ईसाई धर्म में नहीं हुई। उन लोगों ने किताब में जो लिखा है, उसे चुपचाप मान लिया। हम लोगों ने चुपचाप नहीं माना, बल्कि कहा, 'भगवान है कि नहीं, पहले इसका निर्णय करो।'

आदर्शवाद और यथार्थवाद

आदर्शवाद और यथार्थवाद में अन्तर होता है। जीवन में दोनों के बीच संतुलन आवश्यक है। अगर तुम संस्था या आंदोलन चला रहे हो तो कभी काम करवाने के लिए गुस्सा भी दिखाना पड़ता है। क्रोध नहीं करना चाहिए, यह एक आदर्श है, लेकिन व्यावहारिक जीवन में कभी-कभी क्रोध जरूरी हो जाता है। यह वही समस्या है जिसका अर्जुन ने महाभारत में सामना किया था। युद्धभूमि में उसने अपने सगे-सम्बन्धियों और गुरुजनों को देखा, जिनके साथ उसे युद्ध करना था, मारना था। आदर्श तो यही है कि हिंसा नहीं करनी चाहिए, गुरुजनों का आदर करना चाहिए, युद्ध की बजाय शांति होनी चाहिए। लेकिन उस परिस्थिति पर थोड़ा-सा भी चिंतन करो तो देखोगे कि युद्ध अवश्यंभावी था। मगर अर्जुन नहीं समझ पाया, उसका संदेह बना रहा और उसका संदेह दूर करने के लिए श्रीकृष्ण को उसे निष्काम कर्म योग की शिक्षा देनी पड़ी।

निष्काम कर्म योग का क्या मतलब है? कर्म करना तुम्हारा दायित्व है, तुम्हारा अधिकार है, लेकिन कर्म का जो फल है, जो परिणाम है, उसके बारे में तुम्हें चिंता नहीं करनी है। तुम किसी पेड़ का बीज जरूर बो सकते हो, लेकिन उस बीज से पेड़ निकलना और उस पर फल आना तुम पर निर्भर नहीं है। इसलिए फल के बारे में सोचे बिना अपने कर्त्तव्यों को करते जाना चाहिए।

जब मैं संस्था से जुड़ा था तो कई प्रकार के निर्णय लेने पड़ते थे। संस्था बड़ी थी और काम करने वाले लोग भी कई तरह के थे। मुझे अनुशासन लागू करना पड़ता था और अगर लोग अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाते थे तो उन्हें निकालना भी पड़ता था। आखिर मेरा संस्था के प्रति उत्तरदायित्व था, आयकर जैसे अनेक सरकारी विभागों के प्रति मेरी जवाबदेही थी। इसलिए मुझे आश्रम के लोगों के साथ एक संन्यासी के रूप में नहीं, बल्कि संस्था के अध्यक्ष के रूप में पेश आना पड़ता था।

जब गंगा दर्शन बन रहा था, वहाँ एक आदमी रहता था जो उस जमीन पर कई सालों से कब्जा किए हुए था। वहाँ से जाने का उसका कोई इरादा नहीं था। उस समय क्या मैं यह कहता, 'मैं एक संन्यासी हूँ, मैं उसे बेदखल क्यों करूँ?' नहीं, मैं संस्था का अध्यक्ष था और उसे बाहर करना मेरा दायित्व था। फिर भी उसे किसी जोर-जबरदस्ती से नहीं निकाला। हमने अदालत में मुकदमा दर्ज किया और अंत में उसे निकलना पड़ा।

कई बार जीवन में धर्म और कर्त्तव्य के बारे में संदेह और सवाल उठते हैं। संस्था का अध्यक्ष होने के नाते मुझे संस्था के हित के लिए जो भी उचित और न्याससंगत था, करना ही था। उस समय मैं संन्यासी की भूमिका नहीं निभा रहा था, क्योंकि संन्यासी का धर्म दूसरा होता है। आखिर संन्यासी का धर्म यही न होता है कि अगर कोई तुम्हारी कमीज ले तो उसे अपनी पतलून भी दे दो। अगर कोई तुम्हें थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी आगे कर दो। अगर कोई तुम्हारी चीज चुरा ले तो चुपचाप लेने दो। त्याग और वैराग्य—संन्यासी का यही धर्म होता है। लेकिन जब तुम किसी संस्था के मुखिया की भूमिका अदा करते हो तो तुम्हें अपना व्यक्तित्व भुला देना पड़ता है।

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था—'तुम दार्शनिक पण्डित की तरह बातें कर रहे हो, लेकिन यथार्थ कुछ और है। इस समय तुम न तो दार्शनिक हो, न भीष्म के पोते हो, न द्रोण के शिष्य हो, न दुर्योधन के भाई हो। तुम इस सेना के सबसे वीर महारथी हो, और सामने शत्रु की सेना खड़ी है। तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है? यह मत सोचो कि तुम्हारे बन्धु-बान्धव मारे जाएँगे, उनकी पत्नियाँ विधवा

हो जाएँगी। नहीं, सेनापति को यह सब नहीं सोचना चाहिए। अगर तुम युद्ध नहीं करना चाहते तो पहले सोचना चाहिए था और पहले मना कर देना चाहिए था। धृष्टद्युम्न ने युद्ध के लिए लाखों योद्धाओं को एकत्र किया है। अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर लिए गए हैं, सब तैयारियाँ हो गई हैं, और अब तुम कह रहे हो कि मैं नहीं लड़ूँगा। कैसी मूर्खता है यह! यह तुम्हारा धर्म नहीं बल्कि तुम्हारी कमजोरी है, तुम्हारा मोह है जो तुम्हें ऐसा करने के लिए प्रेरित कर रहा है।' श्रीकृष्ण को कई तरीकों से समझाना पड़ा, तब जाकर अंत में अर्जुन को बात समझ आई और वह लड़ने के लिए तैयार हुआ।

यही समस्या किसी होटल के मालिक और वहाँ के कर्मचारियों के बीच या किसी आश्रम के अध्यक्ष और वहाँ के अन्तेवासियों के बीच होती है। अगर मेरे संन्यासी गड़बड़ी करते थे तो मैं उनकी अच्छी खबर लेता था। जरूरत पड़ने पर आश्रम से निकाल भी देता था। मैं साफ-साफ कहता था, 'देखो, व्यक्तिगत रूप से भले ही तुम मेरे शिष्य हो, लेकिन इस संस्था में तुम एक कार्यकर्त्ता हो और मैं अध्यक्ष हूँ। तुम ठीक ढंग से काम नहीं कर सकते तो बेहतर है कि चले जाओ। मैं बेशक तुम्हारा गुरु हूँ, पर तुम्हें इस बात का नाजायज़ फायदा नहीं उठाना चाहिए।'

धर्म का प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है कि इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य, तुम्हारा दायित्व, तुम्हारी ड्यूटी क्या है। मान लो अदालत में न्यायाधीश के सामने किसी के खून का मामला आता है और वह खून उसी न्यायाधीश के बेटे ने किया है। क्या वह मुकदमे पर फैसला न्यायाधीश के रूप में देगा या पिता के रूप में? उसे न्यायाधीश बनकर ही निर्णय देना चाहिए क्योंकि उस समय वही उसका धर्म है। लेकिन अगर वह पिता बनकर निर्णय देता है, तो यह उसका मोह है, उसकी आसक्ति है, उसका व्यक्तिगत संबंध है। व्यक्तिगत संबंध के आधार पर कोई न्याय नहीं होना चाहिए, वह संबंध चाहे पति से हो या पत्नी से या संतान से। लेकिन सब जगह व्यक्तिगत संबंध, मोह और आसक्ति ही हमारे कर्मों के आधार बनते हैं। राजनीति में देख लो, यही हो रहा है। देश-विदेश में कितनी ही ऐसी चीजें हो रही हैं जिनका आधार धर्म नहीं, स्वार्थ और मोह है।

धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इस बारे में लोग भ्रमित ही रहते हैं। एक और उदाहरण देता हूँ। एक स्त्री ने अपने पति को छोड़ा क्योंकि वह शराब पीता था और लड़कियों के पीछे भागता था। बहुत अच्छा किया। पति से तलाक ले लिया और अपने इकलौते बेटे की खुद से परवरिश की। बड़ा होने पर लड़का भी यही करता है, उसको मारता भी है, पर लड़के को छोड़ नहीं पाती है। यह नहीं कि जिस तरह से उसने अपने पति को छोड़ दिया था, वैसे ही लड़के को छोड़ दे। उसका लड़का चोर या गुण्डा क्यों न बन जाए, लेकिन उसे छोड़ नहीं सकेगी। कारण है मोह। उचित और अनुचित की बात नहीं है, बस यहाँ पर मोह टकराता है।

सामाजिक दृष्टि से देखो तो एक अलग निर्णय होता है, व्यक्तिगत दृष्टि से देखो तो निर्णय बदल जाता है। एक होती है व्यक्तिगत दृष्टि, जिसमें व्यक्ति को केन्द्र बनाकर चलते हैं, और दूसरी होती है सामाजिक दृष्टि जिसमें समाज केन्द्र होता है। अगर समाज को केन्द्र बनाकर चलो तो समाज यही कहेगा कि तुम्हें पति को नहीं छोड़ना चाहिये। लेकिन व्यक्ति के रूप में तुम हमेशा अपने सुख को, अपनी सुविधा को, अपने आराम को ज्यादा प्राथमिकता दोगे। पश्चिम में आज यही तो हो रहा है। जब पति को पत्नी से या पत्नी को पति से कष्ट होता है तो एक-दूसरे को छोड़ देते हैं। एक छोटी-सी घटना है। एक लड़का था, उसने एक लड़की से शादी की। लड़का पढ़ता था, कहीं नौकरी-चाकरी भी करता था। लड़की हवाई जहाज में काम करती थी, उसे बाहर भी जाना पड़ता था। फिर बच्चा पैदा हुआ जो अपाहिज निकला। अब वह लड़का कहने लगा, 'तू तो चली जाती है अपने काम पर। मैं बच्चे को देखूँ या अपनी पढ़ाई को। अच्छा है कि अलग हो जाएँ।' यहाँ पर उसने न तो स्त्री का ख्याल किया, न बच्चे का, केवल अपना ख्याल किया।

अपने को केन्द्र बिन्दु बनाकर जो निर्णय लिये जाते हैं वे व्यक्तिगत माने जाते हैं। आधुनिक सभ्यता इसी पर जोर देती है। आधुनिक सभ्यता का मूल बिन्दु है कि व्यक्ति अपने में एक अलग दुनिया है। पाश्चात्य देशों में इस विचारधारा का प्रचार करने वाले बहुत-से दार्शनिक हुए हैं। इस पर बहुत बड़ी चर्चाएँ की हैं कि समाज और व्यक्ति, दोनों में श्रेष्ठ कौन है? किसको प्रधानता देनी चाहिये, किसकी पसंद को मानना चाहिये? क्या समाज के कारण व्यक्ति दु:खी हो? क्या व्यक्ति को इतना अधिकार नहीं कि वह अपने सुख के लिये ही सब कुछ करे? इस पर बहुत चर्चा हुई और आखिर में पाश्चात्य समाज ने व्यक्तिवाद को महत्त्व दिया। पहले पाश्चात्य जगत् भी समाज प्रधान था, जैसे हमलोगों के यहाँ है, किन्तु चर्चा करते-करते पिछले डेढ-दो सौ सालों के बीच उन लोगों ने यह निर्णय लिया कि नहीं, व्यक्ति जन्म से स्वतंत्र है, उसे अपने निर्णय लेने का जन्मजात अधिकार है। उसे सुख भोगने का, मनपसंद व्यक्ति से विवाह करने का, शिक्षा प्राप्त करने का, अपना व्यवसाय चुनने का, अपना धर्म चुनने का, अपना नाम चुनने का, सब चीजों का अधिकार है। वह चाहे तो हिन्दू-पद्धति से पूजा कर सकता है या ईसाई-पद्धति से। वह चाहे धोती पहन सकता है, पैंट पहन सकता है या हॉफ-पैंट भी पहन सकता है। बस एक चीज पर प्रतिबन्ध लगाया। तुम कुछ भी करो, केवल देश के कानून और व्यवस्था पर चोट नहीं आनी चाहिये। तुम्हारे किसी काम से समाज के कानून और व्यवस्था में गड़बड़ी होती है तो तुम दोषी हो, तुम्हें दण्ड मिलेगा।

पाश्चात्य जगत् में समाज और परिवार किसी के भी व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। बाप बेटे से यह नहीं कह सकता कि मैंने तुझे पढ़ाया-लिखाया तो तू मेरे लिये यह कर। स्त्री पति से नहीं कह सकती कि तुमने मुझसे

शादी की, तुमने वायदा किया तो ऐसा करो। वहाँ के लोग साफ-साफ कहते हैं, 'मैं तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहता, पटरी नहीं बैठेगी। जिन्दगी भर लड़ाई के बदले अच्छा है हम-तुम अलग हो जाएँ और यार-दोस्त की तरह कभी-कभी टेलीफोन पर बात कर लें, दोस्ती भर बनी रहे।'

अब इस समाज ने व्यक्तिगत जीवन को प्रधानता देकर अनेक प्रतिभाशाली लोगों को पैदा कर दिया। दूसरी ओर हमारे समाज ने व्यक्ति की प्रतिभा को दबाया है। यह सच्ची बात बोल रहा हूँ, निन्दा नहीं कर रहा हूँ। हम संन्यासी हैं, राष्ट्रीयता और वैदिक धर्म तो हमारे खून में है, मगर हम एक चीज जानते हैं कि जब तक मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं दी जायेगी, वह अपनी प्रतिभा का विकास नहीं कर पायेगा।

माता-पिता लड़के को वकील बनाना चाहते हैं, मगर वह तो इंजीनियर बनने लायक है। माता-पिता लड़के को डॉक्टर बनाना चाहते हैं जबकि वह पत्रकार बनने के लायक है। माता-पिता लड़के को प्रोफेसर बनाना चाहते हैं, मगर वह तो साधु बनने लायक है। यह निर्णय माता-पिता कर ही नहीं सकते क्योंकि माता-पिता और बच्चों में भेद होता है। मेरा दिमाग मेरे बाप के दिमाग से अलग है, मेरा मन मेरी माँ के मन से भिन्न है। अब चूँकि मेरी माँ को गाँधी जी पसंद थे, मेरे पिताजी स्वामी दयानन्द जी को मानते थे, इसीलिये मैं भी दयानन्द जी और गाँधी जी से प्यार करूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता।

व्यक्ति की स्वतंत्रता से, व्यक्ति को प्रधानता देने से क्या दुर्घटना हो सकती है, वह तो आगे चर्चा का विषय होगा, मगर व्यक्ति को प्रधानता देने से राष्ट्र किस हद तक उन्नति कर सकता है, उसको जानना चाहो तो पश्चिम का उदाहरण देखो। अनेकों प्रतिभाशाली लोग हैं वहाँ, विज्ञान के क्षेत्र में, कला में, संगीत में, सभी क्षेत्रों में। इसका मुख्य कारण है स्वतंत्रता।

हर एक लड़के-लड़की के स्वप्न रहते हैं। जब तुम 8 साल के थे तो गुड़ियों के साथ उड़ना चाहते थे। 12 साल की उम्र में तुम्हें भूत-प्रेत का ख्याल रहता था जो कार्टून वगैरह में दिखाते हैं। जब 18 साल के हुए तब पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहा। 25 साल में अपने पेशे में नाम कमाना चाहा। हर मनुष्य स्वप्न-द्रष्टा है, उसकी

महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं, इच्छाएँ और वासनाएँ होती हैं। हर मनुष्य को उपलब्धियों की गरज होती है, सफलता की प्यास रहती है। लेकिन हमारे माता-पिता ने उसके लिये रास्ते अवरुद्ध करके रखे हैं। सामने एक बड़ा रोड-ब्लॉक लगा दिया है—शादी।

मानो या न मानो, मगर शादी जीवन की उन्नति में सबसे बड़ा रोड़ा है। विवाह मनुष्य के जीवन की एक आवश्यकता है, इस बात को तो नकार नहीं सकते। शादी सामाजिक जीवन की भी आवश्यकता है, इसे भी नकार नहीं सकते, मगर साथ ही व्यक्ति के विकास-मार्ग में यह सबसे बड़ा रोड़ा भी है। स्वामी विवेकानन्द जी शादी करते तो क्या होता, सोच लो तुम। हाँ, गाँधी जी ने शादी की, मगर शादी को शादी की तरह नहीं रखा। रामकृष्ण परमहंस ने शादी की, पर शादी को शादी की तरह नहीं रखा। कबीरदास ने भी शादी की, मगर यहाँ कबीरदास, रामकृष्ण परमहंस या गाँधी जी की शादी की बात नहीं कही जा रही है। यहाँ तो आम आदमी की बात हो रही है।

हम जो कह रहे हैं, बच्चों और युवाओं से कह रहे हैं। तुम अपने साथ एक विभूति को लेकर जन्मे हो, एक महान् प्रतिभा और क्षमता को लेकर आए हो। गरीबी तुम्हारे मार्ग में विघ्न नहीं बन सकती। गरीबी विघ्न तब बनती है जब तुम्हारे सामने तुम्हारी औरत भूखी मर रही हो, तुम्हारा बच्चा भूखा मर रहा हो। मगर तुम अकेले भूखे मर रहे हो तो तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। यह मेरा अपना अनुभव है। जब मैं भिक्षाटन करता था, कई-कई दिन भिक्षा नहीं मिलती थी। न दिन में कुछ मिला, न शाम को, न अगले दिन सवेरे। एक दिन तो मेरे सर में भयंकर दर्द हो गया, आखिर में एक आदमी से बीड़ी लेकर पीनी पड़ी! क्या करता, सरदर्द जो कम करना था। मगर मैं अकेला था, इसलिए कोई कष्ट नहीं हुआ। इसे हम कष्ट नहीं, अनुभव मानते हैं। अगर मेरी बीवी या बच्चे साथ रहते तो कितना कष्ट होता मुझे!

स्वतंत्रता पर आधारित व्यक्तिप्रधान जीवन—यह 21वीं शताब्दी के भारतीय समाज की एक झलक रख रहा हूँ आपके सामने। 21वीं शताब्दी में भारत के बच्चे समाज द्वारा नहीं, अपने व्यक्तित्व द्वारा निर्दिष्ट होंगे। अगर नहीं हुए तो भारत आगे नहीं बढ़ सकता। आज का युग ऐसा है कि जितना समय हमें यहाँ से भागलपुर जाने में लगता है उतने समय में हम कलकत्ता से लंदन पहुँच सकते हैं। ऐसे समय में हमारे समाज का मार्गदर्शन करने वाले जो सिद्धांत हैं उन्हें बदलना होगा। चाहे जाति प्रथा को ले लो, चाहे वर्णाश्रम धर्म को ले लो, चाहे पति-पत्नी के धर्म को ले लो, सब जगह बदलाव लाना पड़ेगा। नहीं करोगे तो बेईमानी होगी। तुम ढोंगी बन जाओगे, अपने साथ छल करोगे। सीधी बात यही है।

आप लोगों को ऐसे सिद्धान्त बनाने चाहिए जिनका आज का समाज और व्यक्ति पालन कर सकता हो। केवल उन्हीं धर्मों, उन्हीं विचारों और उन्हीं सिद्धान्तों को बच्चों के सामने रखना चाहिए जो बच्चों की उन्नति के हित में हों। आज के मनुष्य

की सबसे बड़ी ख्वाहिश क्या है? जीवन का स्तर? नहीं, जीवन में उपलब्धि। आज लोगों के लिए जीवन के स्तर या क्वालिटी की प्रधानता नहीं है, बल्कि जीवन में उपलब्धि की प्रधानता है। तुम्हारी अपनी जिन्दगी कैसी है, हमें इससे कोई मतलब नहीं, मगर तुम क्या बन पाए हो, यह हम जानना चाहते हैं। वैज्ञानिक, वकील, डॉक्टर, लेखक, चित्रकार, पत्रकार, नर्तक, संगीतकार, शिक्षक या जनसेवक, क्या हो तुम?

इन गाँव के लोगों से पूछो कि क्या चाहते हैं तो कहेंगे कि गाँव के खेत अच्छे हों, बिल्कुल समतल हों, खेत में स्प्रिंकलर आ जाए और उससे सिंचाई कर लें, टिशू-कल्चर वाले बीज बोएँ, एक एकड़ में ढाई सौ मन धान निकले। यह सब चाहते हैं, मगर कुछ नहीं कर पाते। क्यों? अपने बेटे को वही बैलगाड़ी वाली संस्कृति सिखाते हैं ये लोग। बेटे से कहते हैं, 'ए, काहे मेरी बात नहीं सुनता? ऐसा काहे नहीं करता।' जबकि बोलना चाहिये, 'बेटा, जो तुम करना चाहते हो करो, मगर जिन्दगी में कुछ बन कर दिखाओ। चौदह साल के बाद वापस घर मत आओ, अपनी दाल-रोटी खुद कमाओ। यह खेती-पाती तुमको देने वाला नहीं हूँ, मरने के पहले बेचने वाला हूँ।'

हिन्दुस्तान के बच्चे हमेशा घर की तरफ नजर इसलिये रखते हैं कि बाप से विरासत मिलेगी। इसलिये कमजोर हैं। विदेश में बच्चे मजबूत हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि बाप से तो कुछ नहीं मिलने वाला। बाप तो मरने से पहले वकील से कहकर जाता है कि मेरा सारा पैसा चर्च को दे दो, किसी दातव्य संस्था को दे दो, मगर

बेटा-बेटी को मत दो। वहाँ बेटा-बेटी को विरासत में कुछ नहीं मिलता। बाप अपनी सारी कमाई संस्थाओं को दान में दे जाता है, चाहे लंगड़ों की संस्था हो, अन्धों की संस्था हो, अनाथालय हो या स्कूल हो। इसलिये वहाँ संस्थाएँ बहुत मालदार हैं।

जब आदमी यह सोच ले कि मुझे कोई मदद करने वाला नहीं है, मुझे सारा रास्ता खुद पार करना होगा, तब उसके अन्दर शक्ति का आविर्भाव होता है, उसके अन्दर तृतीय नेत्र खुलता है और उस प्रतिभा की आँख से वह जीवन-पथ को देखने लगता है। उसे संघर्ष करना पड़ता है। संघर्ष के बिना जीवन उन्नत नहीं होता। अगर संघर्ष समाप्त हो जाए तो जीवन भी समाप्त। तुम्हारे पिताजी ने तीस-चालीस हजार रुपये छोड़े हों, दो-चार एकड़ भूमि छोड़ी हो, एक-आध घर छोड़ा हो तो तुम्हारे अन्दर वह असुरक्षा की भावना होगी ही नहीं, तुम्हारे अन्दर वह भय पैदा ही नहीं होगा। सिर के ऊपर छप्पर तो है, दो-चार महीने खाने को पैसा तो है, फटा कपड़ा पहनेंगे, मगर रह तो जाएँगे न। लेकिन जिसके पास कुछ नहीं है, वह तुम्हारी तरह थोड़े ही सोचेगा। वह तो सोचेगा, 'बाप रे! क्या खाएँगे? कुछ-न-कुछ तो करना पड़ेगा।' ऐसा आदमी, जिसके सामने अभाव है, जिसका कोई अवलम्बन नहीं है, जिसके सामने सारे रास्ते बंद हो गये हैं, उसके अन्दर तब एक अजीब प्रतिभा का जन्म होता है। फिर वह आदमी मिट्टी बेचकर भी सोना कमाता है, घास बेचकर भी पैसा कमाता है। कुछ भी कर लेता है, यहाँ तक कि आज पेशाब बेचकर पैसा कमा रहे हैं। मालूम है तुमको? पेशाब से विशेष हॉर्मोन निकालते हैं और वह चिकित्सा में काम आता है। जिसने सबसे पहले पेशाब बेचा होगा वह अभाव और असुरक्षा की इसी स्थिति में आया होगा न?

आजकल के लड़के बाप को सीधे-सीधे बोल देते हैं। लड़कियाँ भी बोलने लग गई हैं। क्यों? इसलिए कि हम बड़े लोग छोटे लोगों के व्यक्तिगत अधिकारों में बहुत ज्यादा हस्तक्षेप करते हैं। हम उन्हें अपनी मूरत बनाना चाहते हैं, अपनी कार्बन-कॉपी बनाना चाहते हैं। लेकिन हमारी सूरत खराब है, तो फिर कार्बन-कॉपी की सूरत भी ऐसी ही होगी।

पश्चिम की प्रगति का यही रहस्य है कि उन्होंने व्यक्ति को आगे बढ़ने की स्वतंत्रता दी है। विज्ञान या वित्त के क्षेत्र में ही नहीं, अध्यात्म में भी पश्चिम ने प्रतिभाशाली व्यक्तियों को जन्म दिया है। योग पर, अध्यात्म पर, उपनिषदों पर, महाभारत पर, पुराणों पर जितना काम उन्होंने किया है, उतना काम यहाँ नहीं हो पा रहा है। हमलोगों के जितने भी बड़े-बड़े आध्यात्मिक आंदोलन हैं, चाहे विवेकानन्द जी का हो, भक्ति वेदान्त जी का हो, महर्षि महेश योगी का हो, स्वामी शिवानन्द जी का हो या आनन्दमयी माँ का हो, उसका संरक्षण, उसकी सहायता बहुत हद तक वही लोग कर रहे हैं।

–21 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

क्रिया योग प्रशिक्षण मॉड्यूल 1

नवम्बर 2016 में स्वामी निरंजनानन्द जी के मार्गदर्शन में क्रिया योग प्रशिक्षण का प्रथम मॉड्यूल (प्रारम्भिक स्तर) संचालित किया गया, जिसमें स्वामीजी ने प्रत्याहार समूह की प्रथम नौ क्रियाओं पर प्रकाश डाला। इन क्रियाओं के माध्यम से साधक अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण और उनका सकारात्मक उपयोग करना सीखते हैं। धीरे-धीरे साधक अपनी सूक्ष्म प्रतिभाएँ विकिसित करते हैं और उनके माध्यम से अपनी चेतना के गहन स्तरों का अन्वेषण कर पाते हैं।

प्रत्याहार का मतलब एकाग्रता या ध्यान नहीं है। इसका तात्पर्य सगजता के प्राकृतिक बहिर्मुखी प्रवाह को उलटा करना है। बाह्य संसार से विमुख होकर अपने आंतरिक अनुभवों से जुड़ने का प्रयास ही प्रत्याहार है।

क्रिया योग के अभ्यासों में हम एक साथ घटित होने वाली ऐसी अनेक गतिविधियों के बारे में सजग रहना सीखते हैं जिनके प्रति हम सामान्य परिस्थितियों में जागरूक नहीं रहते। क्रिया योग में निर्देश दिया जाता है कि मन को सूक्ष्म बनाने के लिए इसे निरंतर क्रियाशील रखना चाहिए। इस प्रकार क्रिया योग के अभ्यासों में चेतना निरंतर चलायमान रहती है।

चेतना के विकास की इस प्रक्रिया की सहायता करते हैं क्रिया योग के यम और नियम। पहला यम है *इन्द्रिय निग्रह,* जिसका मतलब इन्द्रियों को उनके विषयों से प्रत्यावर्तित करना ही नहीं, बल्कि उन्हें शुद्ध करना और उनकी गहन समझ प्राप्त करना भी है।

इसी तरह क्रिया योग का पहला नियम है *दान्ति*, अर्थात् मन का नियंत्रण और संयम। इसमें साधक मन के उन छः विकारों का सामना करता है जो उसे उद्विग्न, विक्षिप्त और नकारात्मक बनाते हैं। ये छः तामसिक विकार हैं काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य। जब मन में क्रोध की लहर उठती महसूस हो और उस समय हम उस क्रोध का शमन शांति की प्रतिपक्ष भावना से कर सकें तो यह दान्ति का व्यावहारिक प्रयोग हुआ। प्रत्याहार समूह की क्रियाओं को सिद्ध करने में ये प्रथम यम और नियम साधक की बहुत सहायता करते हैं।

प्रतिभागियों के अनुभव

क्रिया योग में मैं एकदम नौसिखिया साधक हूँ, और इसलिए क्रिया योग के मौलिक अभ्यासों का प्रभाव देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। मानसिक हलचल और कोलाहल में अनायास विराम का अनुभव हुआ, साथ ही अपने आस-पास तथा भीतर हो रही सूक्ष्म गतिविधियों के प्रति सजगता में वृद्धि का भी अहसास हुआ।

कहते हैं कि अच्छा शिक्षक वह होता है जो जटिल विषय को भी सरल बना देता है। स्वामी योगकान्ति ने क्रिया योग को, जो योग की उच्च शाखा मानी जाती है, हमारे समक्ष इतने सरल, सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया कि हम बिना किसी कठिनाई या भ्रम के सभी शिक्षाओं को आत्मसात् करते गए।

स्वामीजी ने अपने सत्संगों में जिन बिन्दुओं पर भी प्रकाश डाला, वे सभी हम साधकों के लिए आत्मान्वेषण और आत्मजागृति के प्रबल साधन बन सकते हैं। साथ ही अपनी साधना में क्रिया योग को समायोजित करने के लिए व्यावहारिक जानकारी और प्रेरणा भी प्रचुर मात्रा में मिली।

आभार भरे हृदय के साथ मैं घर लौट रहा हूँ। साथ ही मन में दृढ़ संकल्प है कि क्रिया योग की साधना को नियमितता और गम्भीरता के साथ कायम रखूँगा।

– संन्यासी मंगलधर्म, रोमेनिया

इस प्रशिक्षण की सरंचना बड़ी सटीक थी और सभी क्रियाओं को सुगम तरीके से प्रस्तुत किया गया। क्रियाओं की कई बार पुनरावृत्ति करने का अवसर मिला और बारम्बार अभ्यास द्वारा उन पर अच्छी पकड़ हासिल हो गई।

आश्रम वातावरण में सेवा क माध्यम से हम अभ्यासजनित ऊर्जा को सकारात्मक ढंग से अभिव्यक्त कर पाए। स्वामी निरंजनानन्द जी के कुशल मार्गदर्शन और संरक्षण में हमलोग अब एक नई, अनजान आध्यात्मिक यात्रा पर बड़े आत्मविश्वास के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

– संन्यासी विद्याकिरण, कोलोम्बिया

क्रिया योग प्रशिक्षण का अनुभव सचमुच लाजवाब रहा है। क्रियाओं के अभ्यास से न केवल मैं ऊर्जान्वित हुआ, बल्कि चेतना की गहराइयों की झलक भी मिली, अनूठे अनुभवों से आमना-सामना हुआ। अंत में गहन विश्रांति और हल्केपन का अहसास हुआ। अगले साल लौटने के लिए बेताब हूँ।

– वेणुगोपालन, बेंगलुरु

स्वामीजी के सत्संग अद्भुत थे क्योंकि उनके माध्यम से हम क्रिया योग के वास्तविक प्रयोजन को बेहतर ढंग से समझ पाए। व्यक्तिगत स्तर पर मुझे जिस बात ने सबसे प्रभावित किया वह था अपने उस आंतरिक आयाम के प्रति सजग बनना जिसके बारे में पहले पूरी तरह अनभिज्ञ थी। हर क्रिया का शरीर एवं मन पर सूक्ष्म प्रभाव अनुभव कर पाना अपने आप में एक बहुत संतोषजनक अनुभूति थी।

– साधना जयपुरिया, बेंगलुरु

यदि तुम साधना को पूर्ण, विश्वास को गहरा और ध्यान को उच्चतम अवस्था तक ले जा सको तो शास्त्रीय ज्ञान का तुम्हारे अन्दर बिना किसी बाह्य या मानसिक प्रयास के स्वत: ही स्फुरण होगा।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

तन्त्र, क्रिया और योगविद्या

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 893, ISBN: 81-85787-51-4

उपलब्ध

तन्त्र, क्रिया और योगविद्या इस विषय पर प्रकाशित अपने आप में एक अनूठा ग्रन्थ है। इसके 36 अध्यायों में स्वामी सत्यानन्द द्वारा दी गई समग्र योग की शिक्षाओं से संकलित संपूर्ण पाठ्यक्रम प्रस्तुत है, जो सभी स्तरों के योग-शिक्षकों तथा साधकों के लिए परम उपयोगी, व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक मार्गदर्शक है। यह पुस्तक योग की विभिन्न पद्धतियों एवं शाखाओं का परिचय देते हुए उनके अभ्यास-क्रम, सिद्धान्त तथा प्रायोगिक पक्षों को सुव्यवस्थित वैज्ञानिक स्वरूप में प्रस्तुत करती है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

वेबसाइट

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट में सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

योगा एवं योगविद्या वेबसाइट

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ निम्नांकित वेबसाइट पर उपलब्ध हैं–

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ अब IOS उपकरणों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं। इस एप्प को निम्नांकित वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है–
https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786
यह एप्प बिहार योग विद्यालय द्वारा सभी योग साधकों के लिए प्रसाद स्वरूप है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/16-18
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2017

अप्रैल 9-19	योग कैप्सूल-पूर्ण स्वास्थ्य (हिन्दी)
अक्टूबर 1-30	प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण (अंग्रेजी)
अक्टूबर 2- जनवरी 28	चातुर्मासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 1 (अंग्रेजी)
अक्टूबर 16-20	क्रिया योग-मॉड्यूल 2 एवं तत्त्व शुद्धि (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 1-षट्कर्म का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 4-10	हठ योग मॉड्यूल 2-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
नवम्बर 1- जनवरी 30 2018	यौगिक जीवनशैली का अनुभव (विदेशी प्रतिभागियों के लिए)
दिसम्बर 11-15	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 1-आसन-प्राणायाम का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 18-23	राज योग मॉड्यूल 2-प्रत्याहार का विशेष सत्र (अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस

प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।